दर्शन की महिमा

(स्वामी माधवतीर्थ)

माधव स्मृति

पूज्य स्वामी श्री माधवतीर्थजी का ये अंतिम पुस्तक ' दर्शन की महिमा ' प्रकाशित हो रहा है, तभी खुद का प्रकाशन देखने के लिए आज स्वामी स्थूल रूप से नहीं रहे | पुस्तक की छपाई का काम थोडा कठिन था और स्वयं स्थूल शरीर छोड़कर स्वयं के स्वरुप में विलीन हो गए |

माटुंगा (मुंबई) में वेदांत के जिज्ञासुओ की विद्वान् मंडली ने स्वामीजी को आग्रह किया था की ' हमें एक ऐसा पुस्तक दो की जिसमे आपके सभी पुस्तकों का सार आ जाय' | हमारी भी चार सालो से येही बिनती थी की दृष्टी- सृष्टि वाद के सिद्धांत को समझने के लिए प्रक्रिया के रूप में एक पुस्तक तैयार किया जाय, तो दृष्टी- सृष्टिवाद को वैज्ञानिक पद्धति से समझने की जिज्ञासा रखने वाले मुमुक्षुओ को सरलता हो जाय | उसके परिणाम से ये पुस्तक तैयार हुआ और उस वक्त घ्रंघ्राके सेवानिवृत्त महिला डॉक्टर जी. इन्द्राणीअम्मा ने खुद के स्वर्गस्थ माता पिता की स्मृति में छापने हेतु खर्च दिया |

आपश्री कहते थे ये मेरा अंतिम पुस्तक है और उसमे लगभग सौ पुस्तकों का सार आ जाता है | आपश्री का जन्म 1885 के साल में मोरबी में एक संस्कारी कुटुंब में हुआ था | पिताश्री का नाम जेठालाल मेहता और माताजी का नाम दिवालीबेन था और आपश्री के पूर्वाश्रम का नाम मोतीलालभाई था | पिताश्री तथा माताश्री में बहोत से सद्गुण व्यक्त हुए थे | श्रीकृष्ण की भक्ति का रस उनकी नस नस में बहता था, और घर में रोज श्रीमदभागवत का परायण होता था | इस वातावरण में और ऐसे योग्य कुटुंब में जन्म लेने का सद्भाग्य आपश्री को प्राप्त हुआ था |

12 वर्ष की उम्र में किसी परिचित वृद्ध के अवसान की घटना से बालक मोतीभाई के मन में बहोत ही मंथन शुरू कर दिया | उनको बार बार ' मनुष्य मर के कहा जाता है?' ये प्रश्न मन में घुमने लगा, पर इस प्रश्न का योग्य समाधान उनको उस वक्त नहीं मिल पाया था |

इ. स. 1913 में मोतीलालभाई जी. आई. पी. (अभी का सेंट्रल रेलवे) मुंबई में आसी- ऑडिटर की तरह नोकरी करते थे तभी एक महान त्यागी, विद्वान् और ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्रीवामदेवतीर्थ का मिलना हुआ | उनके पास प्रस्थानत्रयी का अभ्यास करते थे तभी कठोपनिषद में यम- नाचिकेत के संवाद के प्रसंग में ' मनुष्य मरके कहा जाता है?' इस प्रश्न के उत्तर में यमराज बोध देते है | इस बात का खुलासा होते ही 17 वर्ष पहले का खुद के प्रश्न का समाधान हो गया | उनको स्वामी श्रीवामदेवतिर्थजी के पास से वेदांत के बहोत से रहस्य जानने को मिले | इसी अंतराल में श्री अरविंद घोष के क्रांतिकारी विचारोने उनको आकर्षित किया, परंतु बाद में ' टारटीनम ओर्गेनम' नाम का श्री अरविंदजी का प्रिय ऐसा पुस्तक पढ़तेही, उसके अंतिम प्रकरणों में दिए हुए सापेक्षवाद के परिणामो से उनको श्री अरविंदजी की विचार श्रेणी से, वेदांत की विचार श्रेणी में ज्यादा रूचि उत्पन्न हुयी और वहा से उन्होंने सापेक्षवाद के पुस्तकों का पढना- और मनन करना बढ़ा दिया |

उनका एक का एक पुत्र बटुक, जिसका सच्चा नाम ' प्रवीणचंद्र ' था | आठ वर्ष की उम्र में अंतिम घडी चल रही थी तभी माता- पिता ने अध्यात्मिक उपदेश देकर निवृत्ति के तरफ इशारत करके शरीर छोड़ गया | उसके अंतिम वाक्य की मोतीलालभाई के ऊपर सचोट असर हुयी | वो वाक्य थे : ' बस, अभी बस, जीवन सभी ऐसा ही है, बांधना है वो बांध लो, देखो ऊँची से ऊँची डाल एक है |

इस प्रसंग के बाद थोड़े दिन के बाद मोतीलालभाई की दृष्टि दिवार के ऊपर गयी तो वहा निचे बताये नुसार वाक्य उनके पढने आया,

" मै पार, वो तू है "

लि. प्रवीणचंद्र

इस प्रसंग से और आतंरिक दृढ़ वैराग्य से उन्होंने नोकरी पर से राजीनामा देकर, राजकोट आकर वानप्रस्थ जीवन बिताने लगे | अभी सब समय स्वयं के अध्यात्मिक अभ्यास में ही जाने लगा| इस प्रकारसे 14 वर्ष वानप्रस्थ दशा में ध्यान, अभ्यास आदि से ज्ञाननिश्चय हो जाने के बाद 1939 में छोटा उदेपुर में स्वामी श्रीस्वयंज्योतितीर्थजी महाराज के पास से संन्यास ग्रहण किया और स्वामी माधवतीर्थ नाम धारण किया |

संन्यास के बाद का उनका कार्य वेदांत के जिज्ञासुओ में और विद्वानों में बहोत ही प्रसिद्ध है | माता पिता के सद्गुण उनके जीवन में स्पष्ट दिखाई देते थे | दया, समता, सरलता आदि गुणों का बहोत ही विकास उनके जीवन में दिखाई देता था | जनता को अध्यात्मिक संस्कार देने की उनकी वृत्ति ऊपर के गुणों के वजहसे बहोत ही तीव्र रहती थी | उसके परिणाम से 130 पुस्तके जिसमे 17 अंग्रजी भाषा में लिखे है तथा अहमदाबाद से उत्तर में लगभग 12 माइल दूर साबरमती नदी के किनारे वलाद गाँव के पास वेदांत आश्रम की स्थापना 1947 में करके जिज्ञासुओ को सत्संग के लिए अच्छी व्यवस्था कर दि |

बहनों में भी उच्च संस्कार अंकुरित करने के लिए और उनकी अध्यात्मिक उन्नति साधने की अनुकूलता मिले और अच्छा सत्संग मिले इस हेतु से वलाद गाँव के भूगोल पर " महिला संस्कार आश्रम " की स्थापना सन 1959 में की | ऐसी व्यवस्था होते ही वेदांत के विचारक और जिज्ञासुओ ने उसका बहोत ही लाभ लिया |

अभी जब भी प्रजा विज्ञान की खोज तथा संस्कार से जड़ वाद के तरफ जा रहा है और प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मुख्य प्रमाण मानता है, तभी उसी विज्ञान से सापेक्षवाद तथा क्वांटम थेओरी के खोज से, प्राचीन आचार्यो ने विस्तृत रीती से विश्लेषण करते हुए विवर्तवाद तथा अजाद्वाद के सिद्धांत को समझने का प्रयास करके, भविष्य की प्रजा को विज्ञान के उपयोग का रहस्य तथा वोही विज्ञान के द्वारा उनकी दृष्टि का मार्जन करने का मार्ग खुला करके, उनके मार्ग पर ज्ञान दीपक आपश्री ने प्रगटाया है |

ऐसे इस खोज का समन्वय धर्म और तत्वज्ञान के साथ करके, पूज्य स्वामीजी ने जो नयी विचार पद्धति प्रगट की है, उस विचारसरणी के ऊपर भविष्य में नए विचारको गहरे में जाकर संशोधन - अभ्यास करेंगे, उससे खुद को एवं प्रजा को बहोत से गहरे और गहन रहस्य मिलेंगे |

जिस देशकाल की माया मनुष्य को बंधन में बांधी रखती है, उसमे से छुटने के उपाय पूज्य स्वामी जी ने उनके पुस्तकों में जगह जगह पर बताये हुए है |

आपश्री 1960 के ओक्टोबर की 29 तारीख के दिन ह्रदय रोग का झटका लगते ही अहमदाबाद सिविल हॉस्पिटल में ले गए थे वहा ता. 18-1-60 तक उपचार हुआ और उसी दिन दोपहर 12-20 बजे फिर से ह्रदय रोग झटका लगा और शरीर छोड़कर विदेहमुक्ति प्राप्त कर ली | अंत तक उनका लेखन कार्य चल रहा था और इस पुस्तक का परिशिष्ठ दुसरे का आखरी पेज शरीर छोड़ने से पहले 0||| बजे लगभग 20 मिनिट तक लिखकर पूर्ण करके, संतोष का श्वास लिया |

ब्रह्मस्वरुप पूज्य स्वामीजी हमारे सबके अंतःकरण में प्रगट प्रकाश फैलाये और अध्यात्मिक उन्नति के मार्ग पर योग्य प्रेरणाए देते रहे |

वेदांत आश्रम
स्वामीकृष्णानंद
पो.वलाद
(जि. अहमदाबाद) ता. 15-12- 60

ॐ

1) जिस दशा में व्यवहार का ज्ञान नहीं रहता है - याने की जब जगत याद नहीं आता है - उस दशा में प्रभु का साक्षात्कार हो सकता है |

2) भाव में जब भी अभेद पना हो तभी वो भाव भगवान ही है, वो भाव हो तो तभी समस्त जीवन सेवारूप हो सकता है |

3) भगवान समरस है जिसे विषमपना लगता है उसे जिस प्रकार से विषमपना होता है उस प्रकारका विषमपना निकलने के लिए साधना करना पड़ता है |

4) समाधी याने सम होकर रहना : याने की समभाव अधिगत करके रहना |

5) अज्ञान जैसी कोई वस्तु नहीं | जिव खुद के मतलब से पूर्ण में से थोडा ग्रहण करता है और बाकि का छोड़ देता है उसका नाम अज्ञान है | पूर्ण ग्रहण करना उसका नाम ज्ञान | थोडा ग्रहण करने से अखंड में खंडित पना दिखता है | इसलिए अज्ञान ये पाप है |

6) भगवान ने कैसा जगत रचा है वो भगवान को जाने बिना नहीं जान सकते है | जिसे जानने के बाद कोई जानने जैसा नहीं रहता है, जिसे देखने के बाद कोई भी देखने नहीं बचता वो है भगवान | जब भी किसी चीज में मन नहीं रहता ऐसी दशा हो तभी भगवान का दर्शन होता है | दर्शन के साथ ही भगवान का ज्ञान भी मिलता है | इस ज्ञान के साथ ही सर्वात्मभाव प्राप्त होता है | इस पृथ्वी से मिले हुए साधन से यदि भगवान शब्द सुन सकते है तो इस पृथ्वी से मिले हुए आँख से भगवान के दर्शन क्यों नहीं हो सकते है ! अपने जन्म के बाद हमने देखा हुआ जगत ये अपनी बुद्धि का जगत है, ये सच्चा जगत नहीं | सच्ची वस्तु नित्य हैं | उस एक नित्य में बाकि का सब कुछ समां जाता है | इसलिए अनित्य जैसा भी कुछ नहीं रहता है | भगवान का अर्थ बहोत विशाल है | भगवान कहते है तब जिव या जगत नहीं रहता है | इसलिए स्वयं भी नहीं रहता है | फिर भी स्वयं है ऐसा लगता है तो खुद भगवान में भगवान से है ऐसा मानना चाहिए | जिसे भगवान मिले उसे शांति रहती है | जिसे भगवान मिले नहीं उसे शांति रहती नहीं | साधन के वक्त शांति मिली है ऐसा मानना भूल है |

सगुण याने की जिसमे से गुण उत्पन्न होते है | और जो गुण के साथ रहता है वो |

निर्गुण याने जिसके गुणों का पार नहीं आ सकता है | सगुण निर्गुण का भेद भी मनुष्य दृष्टि से है | भगवान की दृष्टि से नहीं | भगवान याने जो कुछ था, है और रहेगा ये तिन काम भी मनुष्य की वृत्ति से होती है | वृत्ति कभी भी शुद्ध नहीं; वृत्ति निरोध ही शुद्धि कहलाता है | इस शुद्धि के लिए प्रयत्न ही आजीवनरूप साधन है | मनुष्य की वृत्ति भारुता तीनो काल के ऊपर महाकाल है | ये महाकाल ही क्रिया दृष्टि से तिन काल रूप भासते है | महाकाल से बाहर कोई जा नहीं सकता है | वृत्ति में क्रिया दृष्टि रहने से, महाकाल का परिचय वृत्ति- निरोध से पहले नही मिल सकता है | इसलिए निज शुद्ध अविकृत स्वरुप हमेशा है ही ऐसा जानकर आनंद में रहना ये परम धर्म है |

प्रातः स्मरणीय ब्रह्मलीन स्वामी माधवतीर्थ जी के अप्रगट लेखन में से |

अनुक्रमाणिका

प्रस्तावना

क्षेत्र धर्म

चित्र (नहीं ही दर्शाया गया है)

क्षेत्रधर्म अथवा ब्रह्म की शक्तिया

एक मनुष्य को दिखता हुआ क्षेत्र दुसरे को अलग दिखता है और उसी मनुष्य को दुसरे वक्त वो ही क्षेत्र अलग दिखता है |

ऊपर की आकृतियों में कोई वस्तु नहीं कारण की दृष्टी के पहले सृष्टि नहीं और कार्य कारण भाव नहीं | स्वप्न का कारण खोज ने के लिए स्वप्न को कार्य मानना चाहिए, पर ऐसा करते हुए स्वप्न टूट जाता है, वैसा ही जाग्रत में है | इसलिए दृष्टि- सृष्टि वाद में कार्य- कारण भाव नहीं चलेगा और किसी वस्तु का विचार नहीं चलेगा | नयी नयी अवस्थाए पूर्वदृष्ट नहीं | स्वप्न पूर्वदृष्ट नहीं और जाग्रत भी पूर्वदृष्ट नहीं | एक क्षेत्र में दिखते हुए मनुष्य अलग अलग तारीख पर जन्मे हुए नहीं, इसलिये पाठशालाओ में अभ्यासक्रम में बहोत ही बड़ा बदलाव करना चाहिए और दर्शनशाश्त्र शुरू करना चाहिए |

|| ॐ ||

निवेदन

प्रातःस्मरणीय ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी श्रीमाधवतीर्थजी का ये 130 वा पुस्तक उनकी ज्ञान-तपःसच्चार्या का आखरी पुस्तक है | 1961 में ये प्रथम प्रगट हुआ | अभी 1972 में 11 वर्ष के बाद उसकी दूसरी आवृत्ति करने का सुयोग मिलते ही यत्किंचित संतोष हो रहा है, ये इस के लिए की ये आपश्री का आखरी और साररूप पुस्तक है | उनकी 76 की उम्र में, स्वयं की अखंड ब्रह्माकार वृत्ति में से स्वयं लिखा हुआ है | उसमे भी 27 लाइन तो शरीर शांत होने की अंतिम क्षणों में लिखा हुआ है|

आपश्री स्वयं लिखी हुयी प्रस्तावना के ही वाचक पुस्तक की महत्ता समझने के लये पर्याप्त है | ये समझने से जो नया दर्शन प्राप्त होगा उसमे से सभी संदेह दूर होंगे |

ब्रह्मलीन पूज्य स्वामीजी इस पुस्तक में ज्ञानदेह से उपस्थित है | पढने वालो को इसमें से दर्शन-

प्रेरणा मिलती रहे ये ही प्रार्थना |

" देव- वन "
1895, कृष्णनगर ,
भावनगर - 2
विजया दशमी, सं. 2028

स्वामी माधवतीर्थ
ज्ञान प्रचार ट्रस्ट

प्रस्तावना

ये पुस्तक मात्र पढने के लिए नहीं पर अभ्यास करने के लिए है | और जब भी आत्मज्ञान की बाते करनी हो तभी अज्ञानी को अच्छी लगे ऐसी भाषा नहीं उपयोग किया जाता है | अज्ञानी को अच्छी लगे ऐसी भाषा उपयोग करने से ज्ञानी को अथवा अज्ञानी को कोई लाभ नहीं होता है इसलिए जिज्ञासुओ ने नयी भाषा समझने की आदत करनी चाहिये और कोई बात नही समझ आती है तो गुरु के पास जाकर समझ लेना चाहिए |

वेदांत में सृष्टि- दृष्टि वाद और दृष्टी- सृष्टि वाद ये दोनों वाद चलते है | सृष्टि- दृष्टि वाद के तरह से वेदांत दर्शन में प्रवेश करने के लिए पुस्तके जैसे पंचीकरण, विचारचंद्रोदय, विचारसागर, पञ्चदशी, ब्रह्म सिद्धांत माला आदि है | दृष्टि- सृष्टि वाद में प्रवेश करने के लिए कोई निश्चित प्रक्रिया का पुस्तक नहीं है इसलिए ये पुस्तक तैयार किया है | दृष्टि- सृष्टि वाद में ये एकदम नयी प्रक्रिया है | वो स्वीकारे बिना उसमे प्रवेश हो सके वैसा नहीं है | उसमे दर्शन की महिमा है |

पंचीकरण आदि में सृष्टि- दृष्टि वाद है | और उसमे देशकाल के बारेमे पूर्ण विवरण नहीं मिलता है | दृष्टी- सृष्टि में देशकाल का विवरण है | वो सापेक्ष है और जिस अवस्था की बात चलती हो उस अवस्था में देश- काल अविनाभाव संबंध से रहते है, उसे अंग्रजी में Co- relation कहते है | इसलिए किसी वस्तु का विचार करना अथवा कार्य कारण का विचार करना ये रित दृष्टि- सृष्टि वाद में चल नहीं सकती है | संपूर्ण अवस्था का विचार है |

दृष्टी- सृष्टि वाद में जिव और जगत कल्पित है, वो ब्रह्म में अध्यस्थ है, उसका ब्रह्म के साथ संबंध नहीं होता है, फिर भी सब व्यवहार चलता है | ये माया है | पर माया याने क्या? माया को ठीक तरह से समझने के लिए अभी जितने भी साधन मिल सकते है उतने प्राचीन काल में नहीं थे | खास करके देश और काल का स्पष्ट विचार उपनिषद् में भी नहीं, ब्रह्मसूत्र में नहीं और गीता में भी नहीं | उस वक्त का जीवन के अनुसार वो ग्रन्थ ठीक थे और अभी के जीवन में भी वो उपयोगी है, फिर भी के काल में विमानी व्यवहार के कारण दुसरे देशो के विद्वानों के विचार भी जान सकते है, उसमे लाइब्रेरी, छाप खाने (प्रिंटिंग प्रेस) बहोत ही मदत रूप होते है और सापेक्षवाद की खोज और क्वांटम थेओरी की खोज से देश- काल की माया का स्वरुप समझने के लिए और दृष्टी- सृष्टि वाद स्पष्ट करने के लिए बहोत ही मदत हुयी है | छापखाने की खोज से कितना ही ख़राब साहित्य बढ़ा है और सिनेमा से मनुष्य का मन बिघड़ता है, इसलिए भोग पहले से बहोत ही बढे है और समाज में आत्मज्ञान के लिए जैसा वैराग्य चाहिए वैसा नहीं दिखायी देता है | पर जिसमे विवेक, वैराग्य पाकर आगे बढ़ना है उनके लिए अभी के काल में भी अच्छे साधन मिल सकते है | माया में एक दृष्टि से देखे तो परिणाम दिखता है और दूसरी दृष्टि से देखे तो परिणाम नहीं दिखाई देता है | इस बारेमे श्री शंकर भाष्य में स्पष्ट कर दिया है, फिर भी वो सिद्धांत ठीक तरह से समझने के लिए अभी और भी अच्छे साधन मिल सकते है |

वेदांत के सिवा दुसरे बहोत से दर्शन का परिणाम वाद मानते है | श्री शंकराचार्य विवर्तवाद मानते है | दोनों ही वाद में खास बदलाव देश- काल की रचना का है इसलिए देश- काल की माया ठीक तरह से समझाना चाहिए | वो समझे बिना विवर्तवाद नहीं समझ आयेगा | वो समझाने का प्रयास इस पुस्तक में किया हुआ है | माया मिथ्या है फिर भी वो निति नियम अलग नहीं | उससे व्यवहार ठीक तरह से चलते है | इसलिए माया के नियम और कायदा ठीक तरह से खोज लेना चाहिए| स्वप्न के ज्ञान के अनुसार स्वप्न भी ठीक तरह से चलता है | उसमे परिणाम दिखता है फिर भी वो विवर्त है | वैसे ही जाग्रत में भी है | विवर्तवाद में विषम सत्ता है और विरुद्ध धर्म जैसा लगता है फिर भी वास्तव में विरुद्ध

धर्म नहीं | रज्जू में दिख रहा साप को यदि पत्थर मारे तो रज्जू को लगता है | स्वप्न में विवाहित मनुष्य उस अवस्था के सिवा विवाहित नहीं रह सकता है |

जगत जिव की कल्पना में है पर जिव आया कहासे? वो जन्म लेता है तब उसे पता नहीं चलता है की मै जन्मा हु? जब तक जिव सच्चा का स्वरुप नहीं समझेगा तब तक जिव को ब्रह्म रूप नहीं कर सकता है | श्रीमद भागवत में एकादश स्कन्द में भगवान उद्धवजी को कहते है की :- जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद |

विषय स्विकृतीम प्राहुर्यथा स्वप्न मनोरथः || (11- 22- 39)

अर्थ : प्राप्त हुआ देह आदि विषयो को अहंभाव के द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकार कर लेना येही जिव का जन्म है |

ऊपर बताये नुसार जिव का जो अर्थ है उसे वेदांत में वाच्यार्थ कहते है और इस दशा का जो तटस्थ साक्षी हो उसे जिव का लक्षार्थ कहते है | इस रीती से वेदांत में जिव के दो अर्थ होते है

स्वप्न के वक्त स्वप्न ये जाग्रत है | उसमे जिव के वाच्यार्थ का पता चलता है, पर लक्षार्थ का पता नहीं चलता है | स्वप्न में भोग है पर विवेक नहीं | जाग्रत में भी जो लोग संसार के भोग में रचे पचे रहते है, वो जिव को जन्म मरण वाला समझते है और विवेक से जिव का लक्षार्थ नहीं समझ सकते है | जिव की अवस्था में से छे दशा निचे बताये नुसार है जैसे :-

1) जब भी जिव जगत को ही देखता है तब जगत ये उसकी दृष्टि का केंद्र बन जाता है और सभी घटनाए वहा से ही शुरु होती है वो ही दृष्टि- सृष्टि वाद है | उस दशा में नौ को गिननेवाला दसवे को भूलता है | इस दशा में जिव को खुद की जगह का पता नहीं होता है | स्वप्न के जिव को पता नहीं के वो खुद घटिया पर सोया हुआ है | जो जिव जन्म लेता है वो भी जगत को ही देखता है, खुद को नहीं देखता है |

2) जन्म में बाद जब जिव में अहंकार जाग्रत होता है तभी उसकी सब बाते अहं से शुरुवात होती है | उस वक्त उसके जीवन की सब घटनाए उसके अहं से शुरुवात होती है | उसे मान अच्छा लगता है, लोगोमे प्रख्यात होना अच्छा लगता है | वो खुद के फोटो निकलता है | खुद नाम हो और बाद में भी नाम रहे ऐसी प्रवृत्ति करता है, सेवा करता है, दान करता है, खुद के जाती के लिए और देश के लिए कर्म करता है, फिर भी तामसिक अहंकार में, राजसिक अहंकार में अथवा सात्विक अहंकार में बदलाव रहता है | जैसी घटना और कर्म उसे अच्छे लगते है वैसा अहंकार उसमे रहता है | अहंकार ये उसकी दृष्टि का केंद्र है |

3) जिव की तीसरी दशा संबंध की है | जगत को जैसे खुद देखता है वैसे ही दुसरे जिव भी देखते है इसलिए मै सच्चा या वो सच्चे? उसका विचार आता है, दुसरे लोग मेरे लिए किस तरह का अभिप्राय देते है | यहासे ही प्रमाण की शुरुवात होती है | उसमे दर्शन का विचार आता है | जिव की पहली दो दशा में दृश्य का विचार है अहंकार भी दृश्यकोटि में है, पर संबंध दर्शन कोटि में है और मानवी कोटि में अथवा प्रमाण की कोटि में है | इस दशा में भी जैसे जैसे बनाव वो स्वीकार करता है वैसा वो बन जाता है, पर उसके दर्शन का दुसरे दर्शन के साथ संबंध है, वो मायिक दर्शन है | फिर भी उसे संबंध और माया अच्छी लगती है | इस बारेमे समझने के लिए जिव के संपूर्ण जाग्रत अवस्था का विचार करना चाहिए | इस दशा में साक्षी भाव नहीं, पर प्रमाण में फुट के बदलेमे तेज रहता है |

4) ऊपर कही हुयी जिव की तीसरी दशा स्वप्न में और सुषुप्ति में चली गयी है, फिर भी स्वयं का आत्मा वो तीनो दशा का साक्षी हो ऐसा लगता है | वो माया का साक्षी होता है तो ये माया कैसी है उसे समझमे नहीं आता है | स्वप्न मायिक है फिर भी कैसे ठीक तरह से चलता है? जाग्रत मायामय है, कल्पित है, फिर भी ठीक तरह से कैसे चलता है? इसलिए अभी कुछ समझने के लिए शेष है | वो समझने के लिए दृष्टि-सृष्टिवाद की जरुरत है | वो इस पुस्तक में समझाया है | प्रतिभासिक सत्ता में प्रमाण तेज है वो अभी के काल में नयी खोज हुयी है |

5) दृष्टि- सृष्टिवाद में जिव के काल का प्रश्न है | जिव कितना वक्त रहता है? स्वप्न में उसका काल बदल जाता है | जाग्रत में दुःख का काल बढ़ जाता है और आनंद में काल कम पड़ जाता है | जो घटना उसके ऊपर असर करती है | उसमें से उसका काल निश्चित होता है | स्मरण से भूतकाल होता है और आशा से भविष्यकाल होता है और बाद में काल की माया उसे काल में पकड़कर रखती है | इसलिए माया में परिणाम दिखते है | वो परिणाम तोड़ने के लिए साक्षीभाव के साथ मनोनाश और वासना क्षय की जरुरत पड़ती है, जब तक वासना है तब तक वासना का ज्ञान रहेगा वो

भुत और भविष्य उत्पन्न करेगा और साक्षी ब्रह्मरूप नहीं होगा | वासनावाला जिव खुद को साक्षी कहे तो वो उस खंड काल में ही रहेगा | वो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त नहीं होता है | वासनावाले जिव को दुसरे बहोत से ऐसे जिव के साथ संबंध है | स्वप्न में संबंध नहीं तो ये संबंध उत्पन्न करते है | पितृलोक में अथवा देवलोक में जाकर भी ऐसे संबंध उत्पन्न करते है और फिर से यहाँ आते है | उसमे भी प्रमाण तेज ही है |

6) दृष्टि- सृष्टिवाद में अन्वय भाव है इसलिए दर्शन में से संपूर्ण अवस्था तैयार होती है | वो दृष्टा से बनी हुयी है और इसलिए वो बदल सकते है | वो खुद की अवस्था का नियामक है | इस दशा में ज्ञेय ये ज्ञान का रूप है | उसमे स्वप्न के जैसा ज्ञान भोक्ता है और ज्ञान भोग्य है | सम सत्ता में साधक- बाधक होते है | उसे अंग्रजी भाषा में equation कहते है | भक्ति मार्ग में ऐसा कहते है की उस वक्त भगवान भक्त को अनुकूल हो ऐसा रूप लेकर भक्त को आनंद देते है | उसे अनुरूप रूप कहते है |

जो आत्मा जिज्ञासु रूप से प्रकाशता है वो ब्रह्मरूप से भी प्रकाशित हो सकता है | उसमे काल का नियम नहीं | दृष्टि- सृष्टिवाद में काल का बंधन नहीं और कारण- कार्य भाव भी नहीं वो लीला है और लीला में सब कुछ संभव है | उसमे प्रेम ये पांचवा पुरुषार्थ है | उसे spiritual marriage कहते है | सृष्टि- दृष्टिवाद में अज्ञान दशा में ज्ञाता को सुख के लिए दूसरी वस्तु की जरुरत पड़ती है| वो वस्तु अनित्य होने से उसे छोड़े बिना बंधन में से मुक्ति नहीं मिलती है इसलिए जगत को मिथ्या मानना पड़ता है | दृष्टि- सृष्टि वाद में कोई वस्तु नहीं | वस्तु को रखने के लिए जगह चाहिए | वो जगह कहा से आयी इस बात का खुलासा नहीं मिलता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में जगह और काल दर्शन में से बनता है | उसका प्रमाण तेज है | इस बात का विवरण प्रकरण 11 में किया गया है |

संपूर्ण जाग्रत अवस्था की रचना समझना और वैसे करने के लिए वस्तु का रूप नहीं लेना ये एक एकदम नयी पद्धति है | उसे दृष्टि- सृष्टिवाद कहते है वो वेदांत में माना हुआ है पर उसकी स्पष्ट प्रक्रिया नहीं मिलती है, वो इस पुस्तक में बताने का प्रयास किया गया है |

एक ही घटना बहोत दृष्टि से देखि जा सकती है इस बारेमे ठीक समझे तो जीवन में सच्चा ज्ञान और सरलता आ जाएगी | मै मेरा पैसा उपयोग करू अथवा किसी को दू तो एक दृष्टि से वो मेरे पाससे कम हो जायेगा पर मै जिसको दू वो मै ही हु ऐसा मान लिया जाय तो मेरा पैसा कम नहीं होगा | देश और काल दर्शन बदलने से बदल सकते है ये अभी के सापेक्षवाद में आश्चर्यकारक खोज हुयी है | सृष्टि- दृष्टिवादवाले ऐसा मानते है की पूर्व- पूर्व संस्कार ये उत्तर- उत्तर संस्कार का कारण है| पर दृष्टि- सृष्टिवाद में पूर्व- संस्कार ये उत्तर संस्कार का कारण नहीं | भूतकाल के स्मरण से भूतकाल बनता है | यदि स्मरण बदल जाता है तो भूतकाल भी बदल जाता है और आशा बदल जाय तो भविष्यकाल भी बदल जाता है | पुणे में कुछ साल पहले बाबाजान नाम की एक मुसलमान महिला भक्त रहती थी | उसे किसीने पूछा “ आप पुणे में कब आये?” उसने जवाब दिया की “ मै जगत उत्पन्न होने से पहले की हु “ इसी तरह से वर्तमान दर्शन बदलने से देशकाल बदल जाता है | पृथ्वी को रखने के लिए जगह चाहिए और जगह दर्शन नुसार बदल जाती है | इसलिए नयी प्रकारकी विचार- पद्धति की जरुरत है |

चेतन जगत का निमित्त कारण है वैसे ही उपादान कारण भी है ये ब्रह्म सूत्र का सिद्धांत है, इसलिए जगत का कारण अविद्या है ऐसा नहीं कह सकते है | जगत ये चेतन का विवर्त है और अविद्या का परिणाम है ऐसा भी नहीं कह सकते है | परिणाम शब्द उपयोग करने से पहले काल का विचार स्पष्ट करना चाहिए | वेदांत में छे अनादी माना है वो भी ठीक नहीं | सांख्य में दो अनादी है और उससे उसमे लाघवगुण है; फिर भी दोनों के बिच खली जगह किसने की उसका विवरण नहीं मिलता है | दृष्टि- सृष्टिवाद जगह और काल का विवरण अच्छी तरह से दिया है | वो प्रकरण 11 और 12 में बताया है | ये प्रक्रिया सिखने के बाद कारण- कार्य की पद्धति छोड़कर विवर्तवाद अथवा दृष्टि- सृष्टिवाद पकड़ना चाहिए |

जब भी हमें साप दिखता है, तभी वो आठ मिनिट पहले का सूरज दिखता है कारण की सूरज का तेज अपने पास आनेतक आठ मिनिट लगते है | उसी तरह से सृष्टि- दृष्टिवाद में सभी चीजे दृष्टि के पहले से ही पड़ी रहती है | दृष्टि- सृष्टि में सभी जाग्रत अवस्था दर्शन के साथ अविना भाव संबंध से रहती है | उस दशा में एक चेतन भी विषम सत्ता है, विवर्त है | (स्वप्न के जैसे)

अविनाभाव संबंध दर्शन अथवा श्रावण के अंतर्गत (internal) रहता है | जैसे की ग्रामोफ़ोन का संगीत, शब्दों की लहरे, समुद्र की तरंगे, स्वप्न की घटनाए आदि | इन सब में अंश- अंशीभाव नहीं बनता है | उसमे कोई वस्तु

अलग नहीं कर सकता है | ये दृष्टि- सृष्टिवाद प्रक्रिया है | उसमे हम जगत को किस तरह से पकड़ते है उस ऊपर सब आधार है |

Our approach to reality is of fundamental importance, as reality seems almost to " give in " to our ideas. The mere way in which we approach it lays a great responsibility upon us, for instance

1) If we presuppose nothing but mechanical laws, we get a mechanical universe .

2) If we presuppose evolution, everything seems to fall in with this idea.

3) If we presuppose persons and only if we do so, we get a world of persons.

4) If we acknowledge absolute values, we also experience them.

This confirms the predominance of internal reality where anticipation is needed to arrive at any understanding at all. Therefore, we should control our anticipation and give right direction to them.

याने की अपनी दृष्टि क्या अच्छा लगता है उस ऊपर सब आधार है | जी की :-

1) यदि हमें जड़वाद अच्छा लगता है तो जगत जड़ जैसे होकर अपने सामने आएगा |

2) यदि हमें परिणामवाद अच्छा लगता है तो इतिहास की बाते याद रहेगी | राज्य की घटनाए और न्यूज़पेपर अच्छे लगेंगे और धर्म की बाते याद नहीं रहेगी |

3) यदि हमें समाज सेवा अच्छी लगेगी तो वैसे ही मनुष्य अपने सामने आएंगे |

4) यदि हमें धर्म की अथवा मोक्ष की बाते अच्छी लगेगी तो संसार ऊपर वैराग्य आएगा, वैराग्य आये वैसी घटना अपने जीवन में बनेगी और वैराग्यवान साधुओ का संग होगा |

इसलिए मनुष्य का सच्चा जगत उसके अंदर है | उसके कायदे समझने के लिए उसे दृष्टि- सृष्टिवाद कहते है | उसका थोडा रूप इस पुस्तक में मंगलाचरण में दिया है |

वेदांत आश्रम
पोस्ट- वलाद (जिल्हा अहमदाबाद) **स्वामी माधवतीर्थ**

तृतीय आवृत्ति की

प्रस्तावना

प. पू. ब्रह्मलीन स्वामी श्रीमाधवतीर्थजी के लिखे हुए सभी पुस्तको (130 पुस्तके) में से ये सब से आखरी पुस्तक है | उसमे अंतिम 27 लाइन तो शरीर शांत होने से कुछ क्षण पहले ही लिखे हुए है | आपश्री के ज्ञान- तपह्स्चार्या में से लिखे हुए सभी पुस्तकों का ये पुस्तक निचोड़ है याने की आपश्री का अंतिम और साररूप पुस्तक है, और सभी गहन प्रश्नों का सरलता से निरसन किया हुआ है|

ऊपर बताये नुसार स्वामीश्री ने आपश्री के शरीर का अंत तक जिज्ञासुओ को प्रेरणा और मार्गदर्शन देने के लिए उपयोग किया हुआ है | इस पुस्तक में आज भी स्वामीश्री ज्ञान- देह से प्रत्यक्ष है |

आशा है की इस पुस्तक के पुनःमुद्रण से जिज्ञासुओ को उसमे से दर्शन- प्रेरणा मिलती रहे |

इस पुस्तक के पुनःमुद्रण की सुंदर तथा शीघ्र छपाई के लिए ट्रस्ट श्री श्रीजी प्रिंटर्स का आभार मानते है |

स्थल : वेदांत आश्रम
मु. फूलपुरा, पो. वलाद,
जि. गांधीनगर - 382555
ता. 16- 7- 2000
वेदांत आश्रम ट्रस्ट

दर्शन की महिमा

प्रकरण 1

अनुबंध चतुष्टय

ब्रह्म अखंड है | वो निर्गुण है, वैसे ही सगुण है | उसका अर्थ ये है की निर्गुण ब्रह्म सर्व शक्तिमान है | उसका मंगलाचरण शुरुवात में करना चाहिए | पंचीकरण में केवल निर्गुण का लक्ष होने से निर्विकल्प समाधी रूपी सीता को नमस्कार किया है और रावण रूपी आरोप का अपवाद करनेवाला रामरूपी राम गुरु को नमस्कार किया हुआ है | दृष्टि-सृष्टिवाद में एकीकरण की पद्धति है, जिस दृष्टि से जो देखा जाता है उसका दर्शन अखंड दिखता है | ऐसे अखंड स्वरुप का मंगलाचरण निचे बताये भागवत के श्लोक से करने में आता है :-

मल्लानामशनि नृणां नरवरः
स्त्रीणाम स्मरो मूर्तिमान
गोपनाम स्वजनोंडसतां क्षितिभुजाम
शास्ता स्वपित्रोः शिशुः |
मृत्यु भोजपते विराटविदुषां
तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेती विदितो
रंड.ग गतः सग्रजः | (भागवत 10- 43-17)

अर्थ :- जिस वक्त श्री कृष्ण बलरामजी के साथ कंस ने रची हुयी रंगभूमि में पधारे तभी वो :-

		भाव
1) मल्लोको वज्र जैसे लगे	=	रौद्र
2) मनुष्यको नर रत्न लगे	=	अद्भुत
3) स्त्रियोको साक्षात् कामदेव	=	शृंगार
4) गोपगण को स्वजन	=	हास्य
5) दुष्ट राजाओ को खुद के शासक	=	वीर
7) कंस को मृत्यु रूप	=	भयानक
8) अज्ञानियों को विराटरूप	=	विभीत्स
9) योगियों को परम तत्व	=	शांत
10) वृष्णिवंश के यादवो को इष्टदेव	=	प्रेम और भक्ति

जगत ब्रह्म का विवर्त है इसलिए जहा शृंगार दिखता है वहा देखनेवाली स्त्री जैसा है, जहा वीरता दिखती है वहा देखनेवाला राजद्वारी मनुष्य है, जहा जगत में हास्य दिखता है वहा देखनेवाले को खुद के सगे- संबंधी दिखते है | यदि जगत में सब जगह शांति दिखती है तो देखनेवाला योगी है | इसी तरह से दर्शन समझने से भगवान का स्वरुप समझ सकते है | किसी स्त्री को बहन कहके बुलाये तो देखने वाला उसका भाई होना चाहिए | कोई उसे पुत्री रूप से देखता है तो देखनेवाला उसका पिता होना चाहिए |

राजद्वारी के बारेमे कोई कहे की देश का उत्पादन बढाओ तो वो मनुष्य भगवान को अर्थ- शाश्त्र में लाकर देखता है | श्री रमण महर्षि के जीवन के वक्त दो महायुद्ध हुए थे, फिर भी उन्हें सब जगह पर शांति दिख रही थी | जो घटना जिस मनुष्य के ऊपर जैसा असर करती है, उस ऊपर से उसका दर्शन तैयार होता है | जो ज्ञानी पुरुषों अनंत युग का और अखंड तत्व का विचार करता है उसे अभी का जगत ख़राब नहीं लगता है | मनुष्य किस रीती से जगत की घटनाओ को

रचता है उस ऊपर उसका खुद का मंगलाचरण होता है, याने की उसके दर्शन की शुरुवात होती है | इस रीती से भगवान अनंत रूपो से प्रकाशता है |

1. अधिकारी

जो मनुष्य जिव- जगत को एक करके विचार कर सकता है और जिसे कम बोलने की आदत हो वो यहाँ दिया हुआ प्रक्रिया को समझने का अधिकारी है |

इस पुस्तक में भेद का अभेद नहीं करना है पर भेद का निषेध करना है | ये काम जिव- जगत को एक करके विचार करने से ही बन सकता है | जिव और जगत अनादी नहीं पर प्रतीति काल में जैसे स्वप्न में साथ में दिखता है वैसे ही जाग्रत में भी साथ में दिखता है | इसलिए उसकी शुरुवात मिल सकती है | उसका प्रमाण भागवत के निचे बताए श्लोक में बताया है :

जन्मत्वात्म तया पुंसा सर्वभावेन भूरिदा |
विषय स्विकृतिम प्राहु यथा स्वप्न मनोरथः || (11- 22- 39)

अर्थ :- प्राप्त हुआ देह, जगत आदि विषयो को अहंभाव द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकार लेना ये ही जिव का जन्म है | वास्तव में जिव के जन्म- मरण नहीं होते है | जन्म आदि स्वप्न और मनोरथ के जैसे प्रतिभासिक है जैसे की :-

1) देरानी और जेठानी साथ ही जन्म लेते है, कारण की देरानी आती है तभी जेठानी होती है | याने की देरानी और जेठानी साथ में ही जन्म लेते है |

2) बच्चा होता है तभी बाप होता है |

3) बहु आती है तभी सासु होती है |

4) स्वप्न में जिव और जगत साथ में ही जन्म लेते है |

5) जाग्रत में भी जिव और जगत साथ में ही जन्म लेते है |

ये प्रक्रिया जिसको समझती है वो ही दृष्टि- सृष्टिवाद का अधिकारी माना जा सकता है |

आरंभवाद और परिणामवाद में जिसे शंका होती है वो भी दृष्टि- सृष्टिवाद का अधिकारी है |

नित्य और अनित्य वस्तु का विवेक करनेवाला अधिकारी मिल सकता है, पर दृष्टि- सृष्टि वाद की प्रक्रिया समझने वाला और समझाने वाला वायरल ही होता है | कारण की उसमे भोग का, सुख का और दर्शन का विवेक करना पड़ता है | जो भोग का विवेक नहीं कर सकता है वो नित्य- अनित्य का विवेक ठीक तरह से नहीं कर सकता है |

2 . विषय

दृष्टि- सृष्टिवाद का विषय निर्गुण और सगुण है | असंगत्व वैसे ही सर्वात्मत्व है | व्यतिरेक वैसे ही अन्वय है | किसी को ऐसी शंका होती है की इस रीती से ब्रह्म में विरुद्ध धर्म आ जायेगा तो निचे बताया हुआ दृष्टान्त समझाना चाहिए :-

कोई मनुष्य अलातचक्र गोल घुमाते है तो उस वक्त अग्नि गोल लगती है | तो गोलधर्म दूसरी कोई जगह से आकर अलातचक्र तक नहीं जाता है वैसे ही अलातचक्र स्थिर किया जाय तो वो गोल धर्म निकलकर और कोई जगह पर नहीं जाता है | उसी तरह से ब्रह्म में क्रिया दिखती है फिर भी ब्रह्म वैसे के वैसा ही रहता है | ब्रह्म में क्रिया एक दृष्टि से दिखती है तो दूसरी दृष्टि से नहीं दिखती है | पृथ्वी के ऊपर रहे हुए मनुष्य को प्रथ्वी घुमती हुयी नहीं लगती है पर पृथ्वी से जब अलग होकर देखे तो याने सूरज का प्रमाण लिया जाय तो पृथ्वी घुमती हुयी लगती है | सापेक्षवाद की तरह अनेक धर्म जगत की रचना स्पष्ट करने के लिए ज्यादा उपयोगी है | अनंत ब्रह्म ये दृष्टि- सृष्टिवाद का विषय है |

3 . संबंध

दृष्टि- सृष्टिवाद में संपूर्ण जाग्रत अवस्था का विचार रहता है, इसलिए सभी अविनाभाव संबंध से रहते है | उसे अंग्रजी में Correlation कहते है | जैसे स्वप्न में जीवो की जन्म तारीख अलग अलग नहीं होती है वैसे ही जाग्रत में दिख रहे जीव भी एक प्रमाण के आधार पर अविनाभाव संबंध से रहे हुए है और उनकी जन्म तारीख अलग अलग नहीं | वो संबंध संख्या वाला नहीं पर प्रमाण वाला है | उसमे फुट और घडी का प्रमाण नहीं पर तेज की व्यवलेंथ के नुसार रहता है | रेडिओ उपयोग करनेवाले वो समझ सकते है |

4 . प्रयोजन

विचार की शुद्धि से ज्ञान शुद्ध होता है और अपनेपन की शुद्धि से नए आनंद की अभिव्यक्ति होती है | अन्वयभाव से भेद नहीं इसलिए अबाध आत्मदर्शन है | "मधुराधिपतेरखिलं मधुर" समुद्र के ऊपर के भाग में तरंग है | और निचे के भाग में स्थिरता है | दोनों मिलके ही सागर कहलाता है | अखंड भाव से अखंड आनंद मिलता है |

ज्ञान प्रकाश रूप है, वो माया की हद तोड़ देता है, और सभी अन्वयभाव से एक में समां लेता है | एक ही घटना को अनेक रीती से देख सकते है और सभी रीत उस उस प्रमाण से सच्ची है | पूर्ण में से पूर्ण निकलता है | ऐसा प्रमाण पना ये दृष्टि- सृष्टिवाद का प्रयोजन है |

प्रकरण - 2

अध्यास अथवा नाटक

सृष्टि- दृष्टिवाद में मै- तू का व्यवहार ये अध्यास है और उसका कारण भावरूप मूलाविद्या है | दृष्टि- सृष्टिवाद में कार्य-कारण भाव नहीं, कारण की दृष्टि के पहले काल नहीं | अध्यास का मालक कौन? उसका आश्रय कौन? इस प्रश्न के ऊपर विचार किया जाय तो पता चलेगा की अध्यास ये ही अविद्या है और उसका आश्रय प्रश्नपूछने वाला है | कार्य- कारणभाव अध्यस्थ होने से अध्यास का कारण क्या है ये प्रश्न नहीं पुच सकते है | पहले प्रश्न का पृथक्करण करने की रीत आना चाहिए| उस बारेमे थोडा विवरण परिशिष्ठ में दिया गया है |

कुछ तो भूल जरुर हुयी है और वो दृष्टि का विचार किये बिना दृश्य का विचार करने से उत्पन्न होती है | और जिस जिव में जिस प्रकारका इष्टत्व होगा, प्रियत्व होगा, उस प्रकारका जगत उसे दिखेगा | जैसे की :-

1) शेर डर का कारण नहीं पर शेर से अनुरंजित हुआ ज्ञान डर का कारण है | शेरनी को शेर में इष्टत्व है, इसलिए उसे शेर का डर नहीं लगता है |

2) स्त्री सुख का कारण नहीं पर स्त्री से अनुरंजित हुआ ज्ञान सुख का कारण बनता है | बालक को स्त्री में सुख बुद्धि नहीं होती है |

वाणी से भी भूल होने की संभावना है, जैसे की :-

1) पाकिस्तान को कितने लोगो ने नया देश बनाया | वाणी से और उत्सव से उसमे रस उत्पन्न किया | अभी वो प्रांत अनादी काल हो ऐसा लगता है और वहा सभी खुद को पाकिस्तान के वतनी मानते है | सत्यता से इ. स. 1947 के पहले वहा जन्मे हुए सभी मनुष्य हिन्द में जन्मे थे |

2) भगवान को नया नाम और नया रूप देकर उसकी प्रार्थना करने से और उसका उत्सव करने से वो सच्चा देव (भगवान) बन जाते है और वो अनादिकाल के है ऐसा मानते है | स्वप्न का जगत भी उस वक्त अनादिकाल हो ऐसा लगता है |

3) वेह्वायी के घर उत्सव के प्रसंग में अच्छा भोजन तिन दिन तक खाए हो पर आखरी में कोई कडवा वचन सुनने में आया हो तो वो वचन याद रहता है पर भोजन का सुख याद नहीं रहता है| इसलिए वाणी को देवी कहा है | वाणी के ऊपर, मन के ऊपर और भोग के ऊपर बहोत ध्यान देने की जरुरत है |

अच्छी वाणी और अच्छे संकल्प ये महान शक्ति है और उसमे इतना बल है की वो नए संजोग रच सकते है

| इसलिए काल सच्चा नहीं | रज्जू साप में प्राक- सिद्धत्व धर्म रज्जू का है और साप में आरोपित किया जाता है | ब्रह्म में जगत दिखता है वो ब्रह्म का विवर्त है, इसलिए जगत ये ब्रह्म ही है पर वो ब्रह्म दृष्टि से देखना चाहिए | मनुष्य की दृष्टि का जगत ये सापेक्ष है, जिस संजोग में दिखता है वो संजोग ध्यान में लेना ही दृष्टि- सृष्टिवाद कहते है | संजोग ध्यान में लिए बिना मात्र दृश्य का विचार करना उसे सृष्टि- दृष्टिवाद कहते है | पंचीकरण में इतिहासकी और परिणाम की पद्धति है, इसलिए अध्यास का कारण मूल अविद्या माना हुआ है | दृष्टि- सृष्टिवाद में संजोगो का विचार है, दृष्टा के दर्शन का विचार है | इसलिए उसमे इतिहास की पद्धति और कार्य- कारण भाव नहीं चल सकता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में दर्शन के अनुसार नयी अवस्था बनती है और नयी अवस्था में जिव भी नया ही हो जाता है | जिव अनादी नहीं | परिणाम दिखता है तो वो स्वप्न में दिखते परिणाम जैसे है |

भाषा, विद्या, कला, धर्म, सायन्स और जीवन की विविध प्रवृत्तियो में प्रत्येक प्रवृत्ति को खुद का प्रमाण होता है | कोई विद्यार्थी सायन्स में से आर्ट की कॉलेज में गया तो उस वक्त उसके सायन्स के प्रमाण नहीं चल सकते है | प्रत्येक दिन नया स्वप्न आता है और जाग्रत में भी नयी दशा में प्रमाण बदल जाता है | आखरी प्रमाण ब्रह्माकार वृत्ति है और वो कोई भेद को सहन नहीं कर सकता है | ये दशा आने से पहले दर्शन की शक्ति कम करना चाहिए और सत्य दर्शन पाना चाहिए दोनों तरफ ध्यान रखना चाहियें | मुझे संसार नहीं चाहिए, मुझे अमुक मनुष्य नहीं अच्छा लगता है, ये झूठी पद्धति है | उसमे भी अहंकार है | जब तक स्वयं के स्वरुप का प्रकाश नहीं हुआ तब तक स्वयं के अहंकार को ऐसे निषेध से पकड़कर रखना ये सच्ची रीत नहीं | अहंकार को सरल रास्ता अच्छा लगता है, पर वो माया का जाल है | सच्चा प्रकाश होगा तब बहार के कर्म जरुर बदलेंगे |

इसलिए अधिकार का विचार करके संस्कारी मनुष्य को ही आश्रम में अथवा मंडल में परवश देना चाहिए | प्रवृत्ति के वक्त भी बिच में थोड़े समय निवृत्ति लेकर ध्यान करने आना चाहिए | जो मनुष्य केवल प्रवृत्ति में ही व्यस्त हो जाय तो स्वयं को नहीं देख सकता है और अनात्मा को आत्मा मान बैठेगा |

किसी वकील को पैसे चाहिए हो तो पैसे के लिए उसे झूठ बोलना पाप नहीं लगता है | म. गांधीजी को पैसे से सत्य के ऊपर ज्यादा प्रेम था इसलिए वो बारिस्टर हुए थे फिर भी दुसरे वकीलों की तरह नहीं हो पाए पर वो वकील बारिस्टरो के गुरु हुए | उनके शिष्य ऊँची भावना रखे बिना उनकी जगह पर अपने आप को रखे और पैसो का लोभी हो तो वो खुद के लिए और दुसरो के लिए भी भयावह है |

अधिष्ठान को छोड़कर ज्ञान पाना वो अज्ञान है और अध्यास है | और श्रुति में कहा हुआ है की " एक के ज्ञान से सब का ज्ञान होता है" | वो नयी भूमिका का ज्ञान है | दृष्टि- सृष्टिवाद में पूर्ण से पूर्ण ही निकलता है | नाटक में नट को संपूर्ण नाटक का ज्ञान होता है और खुद का भी पता है, फिर भी वो नया खेल बता सकता है | कृष्ण नटवर है और शंकर नटराज है |

विद्वान् लोग ज्ञात सत्ता को मानते है, कारण की ज्ञान को छोड़कर कोई भी वस्तु सिद्ध नहीं हो सकती है | ज्ञान के अभाव का ज्ञान किसी को नहीं होता है | अज्ञात सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं है |

इसलिए दृश्य सामान्य रीती से दिखता है वैसा नहीं है | उसका उपयोग जिस ज्ञान से जो मनुष्य करता है उसके लिए वैसा दृश्य बन जाता है | उसके दस प्रकार मंगलाचरण में दिए हुए है | जलतरंग के संगीत में मनुष्य अलग अलग गिलास में कम ज्यादा पानी भरके खुद का प्रमाण बना लेता है और बाद में उसे बजता है | स्वप्न में स्वप्न का मनुष्य कितने ही मनुष्य को उत्पन्न करके उनको अलग सा चेतन देकर कितने ही प्रमाण उत्पन्न करता है | वास्तव में सब मिलके वहा एक मनुष्यका दर्शन होता है | उसमे देश-काल नए होते है | जलतरंग के जैसे विचारतरंग होते है | उस वक्त भुत- भविष्य लगते है और प्रारब्ध भी लगता है | देवलोक में भी नियति जैसा लगता है पर वो सब सापेक्ष है | मनुष्य स्वप्न में से जाग्रत में आता है तब दर्शन बदल जाता है | देवलोक में से यहाँ आता तब भी दर्शन बदल जाता है |

आत्मा और अनात्मा का विवेक करना ये सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत है, वो सांख्य की रीत है और योग की रीत है, कारण की उसमे दो पदार्थ माने हुए है | ये वेदांत की रीत नहीं | वेदांत रीत में पहले ईक्षण है अथवा दर्शन है | उसका प्रमाण ब्रह्मसूत्र में पाचवे सूत्र में है |

सृष्टि- दृष्टिवाद में चौराषी लाख योनियों की बात आती है | वो किसीने नहीं देखि है | उसमे मात्र शाश्त्र प्रमाण है | उसमे देश- काल नियत रहता है | अभी उस के लिए नयी खोज हुयी है और देश- काल सापेक्ष हो गए है,

इसलिए चौराषी लाख योनी की बात मानने जैसी नहीं | वो तमोगुणी मनुष्य को डराने के लिए है |

परिणामवाद झूठा है | उसमे 24 घंटे का दिन चाहिए, जो की स्वप्न में नहीं मिलता है | डार्विन का उत्क्रांतिवाद (evolution) भी सच्चा नहीं | वो सृष्टि- दृष्टिवाद का विषय है | जगत अविद्या का परिणाम है ऐसा कहे तो वो भी ठीक नहीं | ये बात यदि सच्ची है तो अविद्या आने के बाद एक क्षण के बाद जगत आना चाहिए और क्षणिकत्व समझने के लिए काल का तत्व पहले ठीक तरहसे समझने चाहिए |

हमें मिथ्या जगत में किसी ने अपनी मर्जी के विरुद्ध जैसे तैसे डाल नहीं दिया है | जगत देखा तो उसमे ज्ञान सत्ता आयी | रज्जू- साप के दृष्टान्त में सामने कोई चीज (रज्जू) पड़ी हुयी है पर उसका पता नहीं | ज्ञान दूसरा रूप लेकर उसमे साप, दंड, धारा, माला आदि कल्पना करता है | पर सामने कोई चीज पड़ी है ये विचार आया कहासे? न्यायशाश्त्र में कहा हुआ है की "अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्वं देश परिच्छेदत्वं" याने की जहा जिस वस्तु का अभाव है वहा वो वस्तु दिखती है उसे देशपरिच्छेद कहते है | सामने साप नहीं, फिर भी साप दिखता है वो देशका परिच्छेद करता है | देह का अभिमान भी देश- परिच्छेद करता है | ऐसी मुश्किल बाते समझने के लिए गुरु की जरुरत होती है|

प्रकरण - 3

गुरु की जरुरत

दृष्टि- सृष्टिवाद समझना हो तो वैसा गुरु चाहिए | कितने ही गुरु आत्मा और अनात्मा के भेद से शुरुवात करते है | वो पद्धति दृष्टि- सृष्टिवाद में नहीं चलती है | अनात्मा को स्व-सत्ता नहीं इसलिए उसका विचार पहले नहीं हो सकता है | कितने ही अविद्या से शुरू करते है पर अविद्या के पहले किसे पकड़ा था वो नहीं कहते है | उसका विवरण प्रकरण 17 में किया हुआ है |

दृष्टि- सृष्टिवाद में प्रत्येक घटना के लिए सच्चा प्रमाण देना चाहिए | उसका आधार दृष्टा के दर्शन के ऊपर है उसमे व्यतिरेक से भी अन्वय भाव समझने की खास जरुरत है | पानी में लकड़ी टेढ़ी लगती है उस अनुभव में लकड़ी को कुछ नहीं हुआ है, पानी का दोष नहीं, अनुभव भी ठीक है, फिर भी उसमे जिव और जगत के बिच में विचित्र संबंध का विचार समाया हुआ है | बहोत से मनुष्य को ऐसे गहरे विचारो में पड़ना अच्छा नहीं लगता है फिर भी उन्हें दुसरे विचार अच्छे लगते है, उसमे से उनका जगत तैयार होता है | इसलिए जिव मात्र जगत को नहीं देखता है पर उसे ठीक लगे ऐसा जगत रचता है, और उतना ही देखता है |

जिव को क्या अच्छा लगता है और क्या अच्छा लगना चाहिए ये जानना बहोत मुश्किल है | इसलिए ऋषिमुनिओ शाश्त्र में चार पुरुषार्थ लिखकर गए | और उसे प्राप्त करने लिए वर्ण और आश्रम की पद्धति भी कह कर गए है | वो ठीक तरह से समझने के लिए गुरु की जरुरत है | वर्णधर्म सृष्टि- दृष्टिवाद का विषय है पर आश्रमधर्म संस्कार ठीक करने के लिए है और दर्शन शुद्ध करने के लिए है | सृष्टि- दृष्टिवाले गुरु अनादी अविद्या से जगत की उत्पत्ति समझाते है इतना ही नहीं पर जिव, जगत, ब्रह्म, अविद्या, माया और संबंध इन छे को अनादी मानते है | इससे सांख्य दर्शनवाले दो अनादी बताते है उसमे लाघव गुण है | दृष्टि- सृष्टिवाले गुरु किसी तत्व को अनादी नहीं मानते है पर सभी अवस्था समकाल प्रतीतिरूप समझाते है |

मनुष्य में सत्य जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होते ही तुरंत ही उसका जिव और उसका जगत बदलने लगता है | उसका अर्थ ये नहीं की ज्ञान होने के बाद सूरज, चाँद और तारे बदल जायेंगे पर जिव में नयी दशा और नया प्रमाण उत्पन्न होगा | फिर भी पुराने प्रमाण की भूल तुरंत ही नहीं दूर होती हैं, इसलिए बार बार गुरु की मदत की जरुरत पड़ती है | खास देखा जाय तो आसक्ति का तत्व बारबार विक्षेप करता है | अन्वयभाव में आसक्ति बहोत ही शुद्ध चाहिए और वो विचार के नियंत्रण में रहनी चाहिए और संजोग बदलने के लिए आश्रमांतर करना चाहिए |

प्रत्येक अवस्था के लिए नयी समता की जरुरत पड़ती है | समता के बिना सुख नहीं स्वप्न में प्यास लगी ये असामनता हो गयी | उस वक्त समानता (equation) करने के लिए वो मनुष्य स्वयं ही कुव्वा, डोरी, बकेट आदि का रूप ले लेता है | इसी तरह से स्वप्न में बांझ मनुष्य का विवाह होता है | जाग्रत में भी प्रत्येक इच्छा असमानता उत्पन्न

करती है और वो इच्छा पूर्ण करने के लिए मनुष्य अनुकूल संजोग खोजता रहता है | इच्छा पूर्ण होती है तब सुख मिलता है | इच्छा का अंत नहीं इसलिए इच्छाओ को मारना चाहिए अथवा उसे भक्ति के रूप में बदलकर आत्मा के तरफ घुमा देना चाहिए | आत्मा नित्य है इसलिए इच्छा का विषय आत्मा हो तो वो हमेंशा प्राप्त है और इसलिए असामनता नहीं होती है | पर ये समझने के लिए गुरु होना चाहिए और शिष्य में पूर्ण जिज्ञासा होनी चाहिए |

इच्छा के अनुसार ज्ञान होता है, उसे अंग्रजी में symbolic logic कहते है | इस प्रकारका न्याय यूरोप और अमेरिका में कुछ वर्ष पहले से शुरू हुआ है | आर्यों के संस्कार में चार पुरुषार्थ की व्यवस्था में उसका समावेश प्राचीनकाल में हो गया है | इच्छा रहित होने के लिए इच्छा रहित हुए हो ऐसे गुरु की जरुरत है | ऐसे गुरु परीक्षित को शुकदेव मिले थे | राम को वशिष्ठ मिले थे | रहूगण को जड़भरत मिले थे | अर्जुन को और उद्धवजी को श्रीकृष्ण मिले थे | नाचिकेत को यम मिले थे | श्वेतकेतु को उद्धालक मिले थे | नारदजी को सनतकुमार मिले थे | जनक को याज्ञवल्क्य मिले थे | यदुराजा को दत्त मिले थे |

श्रीरमण महर्षि जैसे कोई कोई ही महात्मा गुरु के बिना आगे बढ़कर आत्मज्ञानी बन सकते है | उनके लिए भगवान अंतरात्मा में प्रकाश देकर गुरु का काम करते है | शिवजी के गुरु रामदास स्वामी थे | म. गाँधीजी भी गुरु खोजने लगे थे पर उनकी जिज्ञासा के अनुरूप नहीं मिले | स्वामी विवेकानंद को रामकृष्ण मिले थे | मंडनमिश्र ने शंकराचार्यजी को गुरु किये थे | शंकराचार्यजी के गुरु स्वामी गोविन्दाचार्य और उनके गुरु गौड़पादाचार्य थे | निदाध के गुरु रूभु थे |

अभी के गुरु जो की मात्र शाश्त्र का प्रमाण देंगे तो नहीं चलेगा | शाश्त्र के साथ अनुभव, युक्ति और सायन्स का प्रमाण भी चाहिए | पाठशालाओ में धर्म का ज्ञान देना हो तो वहा हिन्दू, पारसी, मुसलमान, जैन, ख्रिस्ती आदि विद्यार्थी भी साथ में पढ़ते है, इसलिए मात्र वेड शाश्त्र के प्रमाण देनेसे वहा पर रुचिकर व्याख्यान नहीं हो सकता है | अभी के नए गुरुओ ने नयी पद्धति अपनाना चाहिए | मनुस्मृति में 12 वा अध्याय ऊपर बृहस्पति की टिका है, उसमे लिखा हुआ है की :

" केवलं शाश्त्र माश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः |
युक्तिहीन विचारे तु, धर्महानिः प्रजायते ||"

अर्थ :- मात्र शाश्त्र का ही आश्रय लेकर कोई भी निर्णय नहीं करना चाहिए | जहा युक्तिहीन विचार हो वहा धर्म की हानी होती है |

पाठशालाओ में तिन अवस्था की रीत होती है तो कोई धर्म के विद्यार्थियो को मुश्किली नहीं आएगी | नयी पद्धति दृष्टि- सृष्टिवाद की तरह से मिल सकती है |

कोई स्त्री किसी की काकी, किसी की मामी, किसी की मासी और किसी की बुआ हो जाती है| जिसे काकी का सुख मिलता है उसे उसमे बुआ का सुख नहीं | एक ही घटना को अनेक तरहसे देखा जा सकता है और उसमे से अनेक रीत निकल सकती है | वैसी रीत गुरु ने शिष्य को बतानी चाहिए | नयी दृष्टि से नया सर्जन करना है; याने की जो दिखता है उसे नयी रीती से देखना है | उसे नया सर्जन कहते है |

अपूर्ण दृष्टि से पूर्ण को अपूर्ण मान लिया जाता है | पूर्ण दृष्टि से वो भूल निकल जाती है | धर्म में इतिहास का भाग और कर्मकांड का भाग मनुष्य को बहोत मुश्किली में डाल देता है | उसका अध्यात्मिक अर्थ करके गुरुने शिष्य को समझाना चाहिए | अखंडभाव अथवा ब्रह्मभाव रहना उसका नाम धर्म है, अथवा जहा सच्चा दर्शन है वहा धर्म है |

जीवन सीधी रेखा जैसे नहीं बहता है | उसमे दर्शन की भूमिका है, और दर्शन की भूमिका का जिसे अनुभव है वो ही समझा सकता है | शिष्य को किसी बारे में रस आता हो तो उसकी तलाश गुरु करते है और बाद में गुरु शिष्य को नए आनंद की दिशा बताते है | ऐसे काम के लिए व्यवस्थित आश्रम चाहिए की जहा योग्य वातावरण मिल सके | ऐसे वातावरण में सब को प्रवेश नहीं दे सकते है| जिसका अधिकार हो उनको ही प्रवेश दे सकते है |

प्रकरण - 4

पंचीकरण और एकीकरण

पंचीकरण में गुरु शिष्य को कहते है की ' शरीर तेरा नहीं वो पञ्चमहाभुत का है, इसलिए शरीर

पञ्चमहाभूत को सोप दे| ‘ शिष्य पूछता है की पंचमहाभूत किसे कहते है? गुरु- आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी | शरीर में जो कठोरता है वो पृथ्वी का भाग है, जिस भाग में द्रवता है वो जल का भाग है, जिस भाग में गर्मी है वो तेज का भाग है, चलना घूमना आदि क्रिया वायु से होती है | शरीर में जो खाली जगह है वो आकाश का भाग है | इसी तरह से पाच भुत एकत्र होकर पंचीकरण करके शरीर की रचना की गयी है |

ऊपर की प्रक्रिया सांख्य दर्शन की है और वो सृष्टि- दृष्टिवाद के रीती से समझाया है | वो वेदांत की प्रक्रिया नहीं | पंचीकरण में उस के बारेमे ज्यादा विवरण देकर उसे आरोप कहा हुआ है और बाद में वेदांत को रीती से उसका अपवाद किया हुआ है | स्थूल शरीर जैसे अन्नमय कोष का है, वैसे ही शुक्ष्म तिन कोष का बना हुआ है, उसे प्राणमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष कहते है| उसका ज्यादा अनुभव स्वप्न में होता है | अज्ञान के कारण देह कहते है और उसका स्थान सुषुप्ति में बत्ताते है | और पंचीकरण में ऐसा कहा हुआ है की ये तीनो देह को मै जनता हु पर वो मुझे नहीं जानते है | इसलिए स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह अनात्मा है | कारण देह को आनंदमय कोष भी कहते है | सुषुप्ति का अभिमानी जिव प्राज्ञ कारण देह से बंधा हुआ है और स्वप्न और जाग्रत के अभिमानी तेजस और विश्व कारण से और कार्य से बंधा हुआ है ऐसा मानते है |

ऊपर की प्रक्रिया सच्ची नहीं उसके कारण निचे बताये नुसार है :-

1) जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तिन अवस्था की बिचमे कार्य- कारणभाव नहीं बन सकता है, कारण की तीनो अवस्था का काल अलग है | जाग्रत का काल स्वप्न में नहीं आता है | कारण कार्यभाव के लिए समानकाल चाहिए |

2) कारण रूप अज्ञान अकेला नहीं रह सकता है | उसका आश्रय प्राज्ञ सुषुप्ति के वक्त खुद को जाहिर नहीं कर सकता है | जाग्रत में जो बाते होती है वो जाग्रत के अभिमानी विश्व करते है, वो जाग्रत के प्रमाण से बाते करते है | इसलिए ऐसा सिद्ध होता है की ये तीनो अवस्था परस्पर विलक्षण है और उनके बिच में कार्य- कारणभाव नहीं बन सकता है |

सच देखा जाय तो जिस अवस्था में कारण हो उसी अवस्था में कार्य भी रहना चाहिए | स्वप्न के बिज में से स्वप्न का ही पेड़ हो सकता है पर जाग्रत का पेड़ नहीं हो सकता है और जाग्रत के बिज में से स्वप्न का पेड़ नहीं सकता है |

और कार्य- कारण भाव में परिणामवाद आ जाता है | वो सांख्य का सिद्धांत है | वेदांत का सिद्धांत विवर्तवाद का है | वो दृष्टि- सृष्टिवाद की रीती से ही सिद्द्ध हो सकता है | अविद्या खुद ही विवर्त है इसलिए जगत अविद्या का विवर्त है ऐसा नही कह सकते है | सामान्य मनुष्य की भाषा परिणामवाद वाली होने से उस भाषा से विवर्तवाद समझाना बहोत मुश्किल होगा | इसलिए एकीकरण नयी भाषा सिखना चाहिए, और देश- काल की सापेक्षता ठीक तरह से समझना चाहिए | एकीकरण की भाषा में जाग्रत अवस्था की चीजो का विचार उपयोगी नहीं पर संपूर्ण जाग्रत अवस्था के बंधारण का विचार है | उसे क्षेत्र धर्म कहते है | अंग्रेजी भाषा में उसे Field theory कहते है | क्षेत्र धर्म में देश- काल नए होते है | गीता में क्षेत्र- धर्म दिया हुआ है उसमे देश- काल का विचार नहीं |

महाभारत के काल में उस बारेमे विचार नहीं किया गया है ऐसा लगता है |

एक अवस्था के देश- काल दुसरे अवस्था में नहीं आते है | दृष्टान्त के तौर पर, जाग्रत के देश-काल स्वप्न में नहीं आते है | स्वप्न में चोबीस घंटे का दिन नहीं | जाग्रत में भी मद, मूर्छा में काल बदल जाता है, जैसे मुंबई की लोकल ट्रेन में बैठा हुआ मनुष्य दुसरे विचारो में डूब जाय तो वो खुद के स्टेशन पर नहीं उतरता है दुसरे स्टेशन पर उतरता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में दृष्टी पहले जगत नहीं और दृष्टि के पहले देश- काल भी नहीं |

जैसे स्वप्न दृष्टा के पहले नहीं | वैसे ही जाग्रत भी दृष्टा के पहले नहीं | जैसे स्वप्न दुसरे वक्त नया बनता है वैसे ही जाग्रत भी दुसरे दिन नया बनता है | एक नदी में दो बार नही नहा सकते | स्वप्न की अवस्था और जाग्रत की अवस्था में पदार्थ दिखता है तो उसका परिणाम दिखेगा पर संपूर्ण अवस्था का विचार किया जाय तो वो (नए स्वप्न के जैसे) नयी नयी बनती होती है | कारण की प्रत्येक मनुष्य की जाग्रत अवस्था एक जैसी नहीं होती है और एक मनुष्य की जाग्रत अवस्था भी दुसरे काल में अलग प्रकारकी होती है | जाग्रत ये स्वप्न का परिणाम नहीं और स्वप्न ये जाग्रत का परिणाम नहीं | परिणाम में समान काल चाहिए और वो चालू रहना चाहिए | कल के जाग्रत के बिच और आज के जाग्रत के बिच सुषुप्ति आती है, इसलिए चालू जाग्रत में भाग पड़ जाते है, इसलिए दुसरे दिन नया जाग्रत बनाना पड़ता है | इसी रीती

से दृष्टि वक्त सृष्टि की प्रतीति है, इसलिए एकीकरण की रीत पकड़ना चाहिए | पंचीकरण रीत सच्ची नहीं | जहा एक अवस्था का प्रमाण दुसरे अवस्था में चल जाता है वहा अतिव्याप्ति का दोष लग जाता है | इसलिए सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत दृष्टि- सृष्टिवाद में काम नहीं आती है | सृष्टि- दृष्टिवाद में ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में ज्ञान के अनुसार ज्ञेय रहता है | स्वप्न में टपाली कागज बाटता है, बैंक का कर्मचारी स्वप्न में नोट गिनता है और रेल्वे का कर्मचारी टिकिट देता है | इसलिए ज्ञान के अनुसार ज्ञेय का आभास होता है | पहले ज्ञान का पृथःकरण करके बाद में एकीकरण करना चाहिए | उस वक्त पता चलेगा की ज्ञान ही ज्ञेय रूप होता है | उसे सापेक्षवाद के नए सायन्स में World line अथवा जगत रेखा कहते है और वो जगत अवस्था के अंदर दिखता है | ज्ञान का ज्ञेय होने में भोग ये मुख्य कारण है | जैसे भोग वैसे ज्ञान होता है, याने की भोग से अनुरंजित हुआ ज्ञान ज्ञेय को उत्पन्न करके वाणी से ज्ञेय को स्थिर कर रखता है, उसे देखनेवाले की जगत- रेखा World Line कहते है |

दृष्टि- सृष्टिवाद में ज्ञान ये मुख्य तत्व है | वो आत्मा का स्वरुप है | और ज्ञान के अभाव का ज्ञान किसी को नहीं होता है | ज्ञान नित्य है और अपरोक्ष है | दृष्टि- सृष्टिवाद में अज्ञात सत्ता नहीं मानी है, इसलिए आत्मा अथवा भगवान सदा अपरोक्ष है |

पंचीकरण अनुसार जिव और जगत अलग रहते है और वो अनादी है | एकीकरण में जिस ज्ञान का विषय जगत है उसी ज्ञान का विषय जिव है | दोनों एक ही सत्ता के आधार से रहते है | सोने की गहने जैसे सोना ही है, वैसे ही ज्ञेय ये ज्ञान का ही रूप है | भाषा ज्ञेय को पकड़कर रखती है, इसलिए वो वाचारंभण याने वाणी का विलास कहते है | स्वप्न में सामने चीजे दिखती है और वहा भी पंचीकरण की रीत उपयोग करनी हो तो उपयोग कर सकते है, कारण की स्वप्न के वक्त वो जाग्रत है| वास्तव में स्वप्न में चीज नहीं पर एक प्रकारका मायावाला चेतन है | इसलिए स्वप्न की चीजो की उत्पत्ति अलग अलग काल में नहीं | स्वप्न में दिखते जिवो की जन्म तारीख अलग अलग नहीं होती है | उसमे आकाश के बाद वायु, उसके बाद तेज, जल और पृथ्वी ऐसा क्रम नहीं | जाग्रत में भी जो दिखता है वो ज्ञान का ज्ञेय होने से संपूर्ण क्षेत्र एक प्रमाण के आधार से सम- काल रहा हुआ है, इसलिए दृष्टि- सृष्टिवाद की रीती से एकीकरण करना सरल होता है | जहा ज्ञान की शक्ति का विचार होता है वहा ज्ञेय चेतनवाला हो जाता है | इसलिए स्वप्न के जैसे जाग्रत में भी जहा दर्शन बदल जाता है वहा दृश्य बदल जाता है |

स्वप्न में चोबीस घंटे का दिन नहीं, फिर भी काल का विचार है | वो काल विचारमे से उत्पन्न हुआ है | मुंबई में आया हुआ स्वप्न के लिए मद्रास से जगह नहीं, फिर भी मद्रास दिखता है| वहा ज्ञान लंबा होता है | काल के भी वर्त्तमान ज्ञान भुत- भविष्य उत्पन्न करता है | भुत- भविष्य की घटना याद करने से काल लंबा बनता है और दुरकी वस्तु याद करने से स्वप्न के वक्त जगह (space) लंबी होती है | उतना आत्मा व्यापक होता है और वो सब उसके अंदर है, इसलिए सब अविनाभाव संबंधवाला है जैसे स्वप्न में घटित होता है वैसे ही जाग्रत में भी घटित होता है | जगह का विचार तोड़ने के लिए सन्यास के वक्त भू,भुव और स्व लोक का त्याग करने में आता है | काल का विचार तोड़ने के लिए पूर्वाश्रम के सगे लोगो को मिलना मना किया जाता है और भविष्य की कल्पना तोड़ने के लिए ‘ तत्वमसि ‘ महावाक्य का बोध करने में आता है |

सभी घर खुद का मानकर भिक्षा मांगने की आदत करने से सभी घर खुद के हो जाते है |

प्रकरण - 5

सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञान

सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञान निचे बताये नुसार दो प्रकारका होता है :-

1) प्रत्येक जगह पाच वस्तु है | उसे सत, चित, आनंद, नाम और रूप कहते है | उसमे सत, चित, आनंद ये सामान्य चेतन है और नाम और रूप विशेष चेतन है | नाम और रूपवाला विशेष चेतन ये सामान्य चेतन (सत, चित, आनंद) का आवरण करता है, इसलिए नाम और रूप के ऊपर वैराग्य की जरुरत है | ये प्रक्रिया सृष्टि- दृष्टिवाद की है |

2) सत, चित,आनंद ये व्यापक सामान्य चेतन है | वो अज्ञान का साधक है | वृत्ति ज्ञान ये विशेष ज्ञान है

और वो अज्ञान को दूर करता है | जैसे की लकडे में रहा हुआ अग्नि लकड़े को नहीं जलाता पर उसका मंथन करके प्रकट किया हुआ अग्नि लकड़े को जलाता है; उसी तरह से श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा जो ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न होती है वो आवरण को दूर करती है | सामान्य सूरज कपास को नहीं जला सकता है पर बिलोरी काच में से पसार किया हुआ सूरज का तेज कपास को जला देता है, उसी तरह से ब्रह्माकार वृत्ति आवरण को भंग कर देती है |

ये प्रक्रिया कितने ही अंश से दृष्टि- सृष्टिवाद को मिलती हुयी आती है | ब्रह्माकार वृत्ति का स्वरुप निचे बताये अनुसार तिन प्रकारका है :-

1) अनात्मा से आत्मा अलग है ऐसी असंग वृत्ति को भी ब्रह्माकार व्रत्ति कहते है, वो सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत है और सांख्य- दर्शन को मिलती हुयी आती है |

2) आत्मा से अलग कुछ नहीं की जिसका संग आत्मा को होता है | उसे भी असंगवृत्ति अथवा ब्रह्माकार वृत्ति कहते है और वो वेदांत की रीत है |

3) सर्वात्म भावना वाली वृत्ति को भी ब्रह्माकार वृत्ति कहते है | जो कुछ है वो (नाम- रूप सहित) ब्रह्रूप है | ऐसी वृत्ति को भी ब्रह्माकार वृत्ति कहते है | वो विशेष चेतन है | वो वृत्ति अखंडभाव से सर्जनात्मक है | स्वप्न में ज्ञान का खेल है | वो खुद की बनायीं हुयी है | पर उस वक्त उसका पता नहीं चलता है | जागने के बाद पता चलता है की वो सब मेरा सर्जन था | जाग्रत अवस्था भी देखनेवाले ने बनायीं हुयी है पर उसको उसका पता नहीं है | जिस प्रकारका सुख उसे अच्छा लगता है उस प्रकारका ज्ञान उसे होता है और उसमे से संपूर्ण जाग्रत अवस्था बन जाती है | वो दृष्टि- सृष्टिवाद की प्रक्रिया है कारण की सपूर्ण दर्शन एक प्रमाण को आधार से परस्पर के संबंध से अविनाभाव रूप से पड़ा हुआ है | जैसे की :-

1. मनुष्य को अर्थशाश्त्र अच्छा लगता है तो जगत अर्थ- शाश्त्रवाला (economic) दिखता है |
2. जिस मनुष्य को काम- शाश्त्र अच्छा लगता है तो उसके नजर में वैसे ही देखाव आते है|
3. जिसे धर्मशाश्त्र अच्छे लगते है तो उसके नजर के सामने ऐसे ही घटनाए घटती है |
4. जिसे मोक्षशाश्त्र अच्छा लगता है तो उसके पास मोक्ष की बाते आती है |

अपरोक्षानुभूति में कहा हुआ है की भाव वृत्ति से जगत भाववाला दिखता है; शून्यवृत्ति से शून्य दिखता है और पूर्णवृत्ति से पूर्ण दिखता है, इसलिए पूर्णत्व का अभ्यास करना चाहिए | आखरी वृत्ति को वृत्ति को ब्रह्माकार वृत्ति कहते है |

अमेरिका का तत्वज्ञानी वाईडहेड कहता है की ' Beware of simple location.' याने की मनुष्य की वृत्ति एक जगह पर नहीं रहती है | नाटक में जैसे नट की जगह बार बार बदलती है वैसे ही विचार के द्वारा मनुष्य भुत भविष्य में जाता रहता है और उस वक्त वो कहा बैठा है उसका पता उसे नहीं रहता है | उसकी थोड़ी बहोत वास्तविकता प्रस्तावना में दि हुयी है |

अध्यास अथवा अज्ञान झूठी वृत्ति से उत्पन्न होते है और ब्रह्माकार वृत्ति से दूर होते है | ब्रह्माकार वृत्ति झूठी वृत्ति को हटा देती है | बाद में आवरण भंग होता है और स्वरुप प्रकाशित होता है|

इस प्रक्रिया में श्रावण के बाद मनन और निदिध्यासन की जरुरत है | कोई ऐसा भी मानता है की मात्र श्रवण से आवरणभंग होता है | जैसे की दस व्यक्ति नदी तैर के नदी के उस पार बैठ गए| बाद में कोई डूब गया तो नहीं ये देखने के लिए गिनने लगे | प्रत्येक व्यक्ति नौ लोगो को गिनते थे पर अपने आप को कोई गिनता ही नहीं था | इस प्रकार से एक डूब गया ऐसा मानकर शोक करने लगे | ये सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत है | उस वक्त किसी साधू ने वहा आकर कहा की ' दसवा है ' ये परोक्ष ज्ञान है | उस मनुष्य ने पूछा की " दसवा कहा है? " तभी साधू ने कहा की " दसवा तू है" इतने श्रवण से ही उनको दसवे का अपरोक्ष ज्ञान हो गया | दसवे के लिए उन्हें कोई मनन या निदिध्यासन करने की जरुरत नहीं पड़ी | उसी तरह से मेरा आत्मा सब में है इसलिए मै सब में जन्म लेता हू, सब में रहा हुआ हू, दूसरेका हाथ वो मेरा हाथ है, दुसरे की सेवा वो मेरी सेवा है, ऐसा लगे तब श्रावण के बाद मनन या निदिध्यासन की जरुरत नहीं रहती है | ऐसी दशा में मात्र श्रवण से आवरण भंग हो जाता है और दर्शन शुद्ध हो जाता है |

सृष्टि- दृष्टिवाद में नाम और रूप के विशेष ज्ञान से भेद हो जाता है | इसलिए वैराग्य के द्वारा भेद के निषेध की जरुरत पड़ती है | दृष्टि- सृष्टिवाद में नाम और रूप अलातचक्र के जैसे अथवा स्वप्न के जैसे अन्तर्गत है, इसलिए भेद

नहीं बन सकता है | सृष्टि- दृष्टिवाद में नाम रूप छोड़कर अथवा अधिष्ठान पकड़कर भेद का अभेद करना पड़ता है | शुरुवात में भेद दिखता है बिच की जगह कहा से आयी उसका विचार करना चाहिए | वो मिथ्या दर्शन से आती है, कारण की जो ज्ञान जगत को सामने रखता है | वो ही ज्ञान जीव को जगत के सामने रखता है | इसलिए दर्शन ठीक करना चाहिए, उसके लिए दृष्टि- सृष्टिवाद की प्रक्रिया ज्यादा अच्छी है | नए दर्शन से नयी अवस्था बनती है | उसमे Totality है और पूर्णमदः पूर्णमिदम का धर्म है | इस दशा में जीवन के विघ्न आत्मज्ञान को जाग्रत रखने के लिए है | सृष्टि- दृष्टिवाद में बहार का जगत एक आरोप है और वैराग्य से उसका अपवाद करना पड़ता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में दृश्य को ठीक तरह से देखने से वो चिन्मय और आनंदमय बन जाता है |

दृष्टि- सृष्टिवाद में अनेक रूप एकके है, अथवा मेरे है | इसलिए मुझे वैसी भावना से रहना चाहिए ऐसी भावना में सुख, सौन्दर्य, कला और शक्ति अनुभव होती है, वो किसीको समझाने की जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए, कारण की दुसरे किसी का अस्तित्व नहीं, इस दशा में स्वरुप प्रकाश है| ये दशा में आत्मा का असंगत्व ये साधन है और आत्मा का सर्वात्मत्व ये फल है | जो हो सके उसे नया रूप देने से देखने वाले को भी नया रूप मिल जाता है | उसे दृष्टि- सृष्टिवाद में “विशेष ज्ञान” कहते है |

प्रकरण - 6
भाग - त्याग लक्षणा

वेदांत में निचे बताये नुसार तिन प्रकारकी लक्षणा मानी हुयी है :-

1) जहती लक्षणा

2) अजहती लक्षणा

3) जहत- अजहत लक्षणा

तीसरे लक्षणा को भाग- त्याग लक्षणा भी कहते है | उसका विवरण पंचीकरण में और वेदांत के ग्रंथो में दिया हुआ है | तो उसे वहा देख सकते है | संक्षेप में, भाग- त्याग लक्षणा में विरुद्ध भाग का त्याग करके अविरुद्ध भाग का ग्रहण करना है जैसे की सोडय देवदत्तः वो ही ये देवदत्त है | याने की पहले में जो देवदत्त को देखा था वो ये देवदत्त है | पंचीकरण में ऐसी कथा आती है की कशी का राजा सन्यासी हुआ तभी शिवदत्त नामके एक मनुष्य ने उसे देखा और बहोत मेहनत के बाद उसे पहचान लिया | वहा काशी प्रदेश, राज्य की समृद्धि और उसके सामर्थ्य का और काल का त्याग करके बाकि रहा हुआ अविरुद्ध शरीर और आत्मा की तुलना करके वो काशी का राजा है ऐसा निर्णय उसने लिया | उसे भाग- त्याग लक्षणा कहते है | वो सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत है | सृष्टि- दृष्टिवाद में दृश्य को देखकर विचार होता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में पहले दर्शन का विचार है | उसमे कोई विरुद्ध अंश दिखता है तो वो भावना के प्रकार के अनुसार दर्शन के अंतर्गत है | उसका स्वरुप मंगलाचरण में बताया है | जहा दर्शन से शुरुवात करना हो वहा ज्ञान का रूप परखना चाहिए | एक ज्ञान से एक वस्तु दिखती है और दुसरे ज्ञान से उस वस्तु का अभाव लगता है | तो वो वस्तु और उसका ज्ञान दोनों भी मिथ्या होते है | जैसे की रज्जू में दिखता हुआ साप | उस साप को पकड़ से नहीं पकड़ा जा सकता है, पर जगत के साथ व्यवहार हो सकता है | उसमे स्वप्न के जैसे मायिक संबंध है और वो ठीक तरहसे समझना चाहिए | मायिक संबंध समझने के लिए प्रश्न करनेवाले की माया समझना चाहिए |

हिन्द में कितने गाँव है? ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है तो प्रत्येक गाँव को एक मानकर गिन सकते है | पर ऐसा प्रश्न आता है की अमुक गाँव में कितने मनुष्य है? तो गिनने की रीत में बदलाव करना पड़ेगा | देवदत्त एक ही मनुष्य है, उसका शरीर परमाणुओ से बना हुआ है, वो परमाणु कितने है? ऐसा प्रश्न आता है तो गिनने की रीत बदलनी पड़ेगी | गीता में भगवान कहते है की सभी मेरे ही रूप है | तो सब का अधिष्ठान लेना होगा और पेड़ में जैसी बिज सत्ता रहती है उसी तरह से गिना जाय तो सच्ची रीत मिल सकती है | सबको अलग अलग भगवान मानने से बहोत भगवान हो जायेंगे और सच्ची रीत नहीं मिल सकती है | किसी जगह पर नदी के किनारे कोई पंडित बैठे हुए थे, वहा एक बालक ने रेती का पोटला लेकर पंडितजी को प्रश्न किया की इसमें कितने रेती के कण है वो बतावो, नहीं तो मै बताता हु | पंडितजी जवाब नहीं दे सके | उस बालक ने जवाब दिया की “ इसमें किस कारण शरमाते हो? ये एक पोटला है”| जिस प्रश्न के लिए जिस प्रकारकी

गिनने की रीत चाहिए वो आना चाहिए | भगवान का स्वरुप निषेध रीती से तिन अवस्था के विचार से जान सकते है | वैसे ही विधि रूप से (एक पोटले के जैसे) अनंत है ऐसे भी जान सकते है | जहा जिसका निषेध होता है वहा अधिष्ठान भी है | इसलिए भगवान को अनंतरूप से जान सकते है |

दर्शन का विचार करने के बाद जो ज्ञेय दिखता है वो ज्ञान का ज्ञेय है, इसलिए विरोध नहीं इसलिए जगत की शुरुवात कब हुयी ये प्रश्न ही झूठा है | प्रत्येक शब्द के पीछे अनेक अर्थ रहे होते है| वो अर्थ शब्द में अथवा दृश्य में नहीं पर दृष्टा के दर्शन में से निकलते है | स्वप्न में डाकिया कागज ही बाटता है, बैंकवाला नोट ही गिनता है और रेलवेवाला टिकिट ही देता है | माया की शुरुवात ममता से होती है | जगत को देखते वक्त ही देखने वाले की भावना उसमे मिल जाती है और बाद में जो जगत दिखता है वो उसकी भावना का रूप है | उसके दृश्य के सभी संबंध उसकी भावना के आधार से टिके हुए है | यदि वो मनुष्य दुसरे विचारो मे चला जाता है तो यहाँ बैठा हो फिर भी उसके पाससे कोई पसार हो जाय तो उसका उसे कोई पता नहीं चलता है | इसलिए सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत सच्ची नहीं |

दृष्टि- सृष्टिवाद में संबंध है, पर संबंध के बहोत प्रकार है | स्वप्न में संबंधी बिना भी संबंध है | वहा तेज का प्रमाण है | संबंधी और संबंध सभी तेज से ही बने हुए है | फुट और घडी के संबंध के विचार और मोहता (मोह) ब्रह्म में नहीं रहते है, कारण की ब्रह्म निराकार है | जहा तेज के प्रकार है और संबंध है वहा मायिक संबंध है और ज्ञान का ज्ञेय होने से त्याग या ग्रहण के विचार नहीं रहता है | देवलोक के बारेमे किसी के ज्ञान के अंदर राम, कृष्ण, शंकर, बुद्ध, मोहम्मद या क्राईस्ट होते है और उसे वैसे दर्शन होते है | वो माया है पर उस दशा में देखनेवाले को संतोष होता हो तो उसका निषेध नहीं कर सकते है |

मुख्य बात ये समझनी है की जिव का और ब्रह्म का संबंध कैसा है | यदि फुट और घडी के माप लेकर तो परिच्छिन्न जिव ब्रह्म में नहीं रह सकता है | इसलिए भाग- त्यागलक्षण से जिव का लक्षार्थ अथवा कूटस्थ ब्रह्म हो सके (घटाकाश और महाकाश के जैसे) | वस्तु से शुरुवात करके प्रश्न पूछने की रीत ये सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत है | उसमे वस्तु को रखनेवाले जगह का प्रश्न नही खुल सकता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में प्रमाण तेज है, सब कुछ तेज से ही बनता है | जिव की रहने की जगह भी तेज से ही बनती है | Light moves as space- line instead of as straight line in space. याने की तेज स्वयं ही जगह बनाता है और काल बनता है | वो देश- काल की माया है | इसका पूर्ण विवरण उपनिषद् में नहीं | वो माया है, वो जिव में अनंत काल तक रहती है और व्यवहार में उपयोगी है, फिर भी ज्ञान का ज्ञेय होने से द्वैत नहीं होता है | क्षणिक विज्ञानवादी के मत में क्षण सत्य है | पातंजलि योग दर्शन में भी क्षण को सत्य माना हुआ है और इसलिए वहा परिणामवाद सत्य मानना पड़ता है | जहा तेज से संपूर्ण अवस्था बनती है वहा संपूर्ण अवस्था विवर्त है | वहा परिणाम की भ्रान्ति है | परिणाम के लिए दो क्षण को जोडनेवाला उसके जैसा तीसरा काल चाहिए | काल कल्पित होने से और दर्शन के अनुसार बदलता होता है इसलिए काल से अपना अंत नहीं आएगा पर अपनेसे काल का अंत आ सकता है |

भाग- त्याग लक्षणा में विरुद्ध भाग का त्याग है | कशी के राजा ने सन्यास लिया उस के पहले उसकी जो दशा थी वो जिसने दिखी थी वो दशा फिर से नहीं देख सकते है | वहा विरुद्ध भाग का त्याग किया गया है | अधिष्ठान में अध्यस्थ बदलता है फिर भी अधिष्ठान वैसा का वैसा रहता है| उसमे परिणाम वाद आता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में जो दिखता है वो ज्ञान का ज्ञेय है | इसलिए विवर्त है | ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं पर ज्ञान के अनुसार ज्ञेय है | परिणाम में दूध का दही हो जाता है तभी सब दूध का उपयोग किया जाता है और इसलिए दही में से दूध नहीं हो सकता है | विवर्त में ज्ञान अखंड रहकर ज्ञेयरूप होता है, इसलिए साप रज्जू हो सकती है और स्वप्न का मनुष्य जाग सकता है | मात्र बहोत डर की अथवा इच्छा की वृत्ति हो तो खुद की भूल का पता नहीं चलता है | स्वप्न में ऐसा है; पर जाग्रत में विवेक बुद्धि है, इसलिए विवर्तवाद समझ सकते है |

प्रकरण - 7

संचित, क्रियमाण और प्रारब्धकर्म

गीता में कहा हुआ है की ज्ञान रूपी अग्नि सभी कर्मो को जला देती है | (4- 37), फिर भी बहोत से

विद्वान् ऐसा मानते है की ज्ञान से मात्र संचित और क्रियमाण कर्म ही जलते है | ज्ञान होने के बाद शरीर रहता है और शरीर का व्यवहार प्रारब्ध कर्म से चलते है | उस कर्म से सुख दुःख होते है, पर उसमे सत्यत्व बुद्धि नहीं रहती है | बिजली का पंखा बंद होने के बाद भी थोड़े समय तक चलता रहता है, वैसे ही ज्ञानी का शरीर भी प्रारब्ध के अनुसार पूर्ण होता है | और ज्ञानी गुरु के पाससे ज्ञान पाने के लिए ज्ञानी का शरीर रहना चाहिए, इसलिए प्रारब्ध कर्म ज्ञान का विरोधी नहीं | प्रारब्ध कर्म से जीवन मुक्ति भी सिद्ध होती है |

ऊपर की प्रक्रिया में सृष्टि- दृष्टिवाद है, कारण की उसमे भूतकाल और भविष्यकाल का विचार है | दृष्टि- सृष्टिवाद में भूतकाल या भविष्यकाल नहीं | ये एक प्रकारकी माया है अथवा एक प्रकारका संबंध है | मनुष्य भूतकाल की घटनाओ का स्मरण करे तो भूतकाल हो जाता है और भविष्य की आशाए रखता है तब उसमे से भविष्यकाल होता है | उस दोनों काल का वर्तमानकाल के मनुष्य के साथ संबंध है | वर्तमानकाल का मनुष्य ज्ञानी हो तो भूतकाल या भविष्यकाल का विचार नहीं करता है | श्री शंकराचार्य ने स्मृति को अध्यास रूप कहा हुआ है | अभी का जिव भूतकाल के जैसा हुए बिना भूतकाल को याद नहीं कर सकता है | पूर्वदृष्टि ये सजातीयता का हेतु है | सिप में भूल से दिखनेवाला अनिर्वचनीय रूपा पूर्व- दृष्ट नहीं | भविष्य काल के लिए भी यदि ज्ञानी को को आशा नहीं अथवा कोई पाना नहीं इसलिए उसके लिए कोई भविष्यकाल नहीं | सामान्य मनुष्य अलग हो जाते है तब कहते है की “ माया रखना “ याने की हम फिरसे अभी के संबंध के अनुसार मिलेंगे, पर बिच के काल में उस मनुष्य के अंदर वैराग्य आता है और वो सन्यास लेता है तो सन्यासी के लिए पूर्वाश्रम के सगे- संबंधियों को मिलने की और उनके साथ व्यवहार करने की शाश्त्र में माना किया हुआ है |

सामान्य रीती से कर्म के चार प्रकार निचे बताये नुसार मानने में आते है |

1) भूतकाल के जन्मोमे एकत्रित किये हुए संचित कर्म |

2) शरीर धारण करने के लिए स्वीकार किये हुए प्रारब्ध कर्म |

3) चालू जीवन में क्रियमाण कर्म |

4) और बाद में होनेवाले आगामी कर्म |

ज्ञान होने के बाद कर्मो का संबंध नहीं रहता है, इसलिए आगामी कर्मो का बहोत विचार नहीं आता है | वास्तव में उसका समावेश क्रियमाण कर्मो में करने में आता है | ऊपर के सभी कर्मो का विचार सृष्टि- दृष्टिवाद की रीती से करने में आये है, उसमे 24 घंटे का दिन और 30 दिन का महिना और 12 महीने का एक वर्ष मान लिया गया है, पर उस अनुसार सच्चा नहीं | स्वप्न में काल बदल जाता है | दृष्टि- सृष्टिवाद के अनुसार जितनी भी घटनाए मनुष्य याद रखता है उसमे से उसका काल उत्पन्न होता है और उस अनुसार मरता है तब ऐसे कहने में आता है की उसका काल आ गया, याने की उसका काल पूरा हो गया | फिर से उसके दर्शन के अनुसार नया काल बन जायेगा | प्रतिदिन नींद में से उठने के बाद जैसी घटनाए जो मनुष्य याद करता है उसमे से उसकी घडी बन जाती है | जैसे स्वप्न की घडी का आधार स्वप्न के दर्शन ऊपर है वैसे ही जाग्रत की घडी का आधार जाग्रत के दर्शन के ऊपर है | अवस्था के विचार में बाजार की घडी कोई काम की नहीं |

मनुष्य के जीवन का हेतु काल को जितने का है (भागवतमहात्म्य 1-11) इसलिए परिणाम की रीत अथवा सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत अच्छी रीत नहीं | स्वप्न में कोई मनुष्य ने भूल की, उसके ऊपर स्वप्न के कोर्ट में केस चला, उसे 15 वर्ष की सजा हुयी, उसमे से स्वप्न में उसने 5 वर्ष का कारावास भोग लिया, उसके बाद वो जग गया, अभी बाकि के 10 वर्ष का प्रारब्ध कौन भोगेगा? जिसने भूल की थी वो स्वप्न का अभिमानी जिव तेजस था | वो जागकर विश्व हो गया और उसने जागकर नया जगत रच दिया | वहा उसका नया जन्म हुआ | उसमे नयी शुरुवात होती है, इसलिए स्वप्न का प्रारब्ध उसे नहीं भोगना पड़ता है | जैसे कल बैंक में डाला हुआ पैसा लेने के लिए वो आज जाता है तो बैंकवाला उसकी सही मिलाकर पैसा दे देता है | ये घटना ये कहती है की उसे पैसा याद आता है और पैसा लेने के लिए वो कल जैसा जिव बन जाता है | शरीर के मरण के बाद भी जितना जीवन उसे याद आता है उसमे से वो नया जिव बनता है |

पर ज्ञानी पुरुष पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा छोड़ देता है | उसे तीनो लोक में कोइ कर्तव्य नहीं रहता है | उसे ज्ञान काल में मुक्ति है | इसलिए ज्ञान होने के बाद लेशाविद्या रही हुयी है ये सिद्धांत भी सच्चा नहीं | यदि लेशाविद्या रहती है और विदेह मुक्ति के वक्त सच्चा मोक्ष मिलता है तो ‘ तत्वमसि ‘ महावाक्य झूठा हो जाय अथवा वो तू

होगा ऐसा वाक्य कहना पड़ेगा, इसलिए लेशाविद्या का विचार अथवा प्रारब्ध का विचार सच्चा नहीं | उपनिषद् ये वेदांत नहीं पर महावाक्य ये वेदांत है | गीता में कहा है उस अनुसार ज्ञानरुपी अग्नि सभी कर्मो को जला देता है | भागवत में भी कहा हुआ है की (11-13-36-37) जो जिव ज्ञानी हुआ वो देह बैठता है तो मानता नहीं की मै बैठा हु, देह उठता है तो मानता नहीं की मै उठता हु | जैसे स्वप्न में से उठा हुआ मनुष्य स्वप्न के देह का अनुसंधान नहीं करता है वैसे ही वो जाग्रत के देह का भी अनुसंधान नहीं करता है | भागवत (3-28-37-38)

अमेरिकन तत्वज्ञानी व्हाइट हेड भी कहता है की :-

The relational theory of space forbids us to consider physical bodies as first in space and then acting on each other, rather they are in space because they inter- act, and space is only the expression of certain properties of their interaction.

याने की खाली जगह पर अपना शरीर पड़ा हुआ है ये बात सच्ची नहीं | शरीर को रखने की जगह कहा से आयी? वो तो घुमती फिरती है और परस्पर जैसा संबंध रखता है उसमे से जगह बनती है |

काल के लिए भी ऐसी दशा है | एक नदी में दो बार नहीं नहा नहीं सकते है वैसे ही कल के जिव- जगत आज नहीं आते है | पर नींद में से जगा हुआ मनुष्य भुत- भविष्य को याद करता है | व्हाइट कहते है We live in durations and not in points. इसलिए काल का संबंध मनुष्य स्वयं उत्पन्न करता है, उसे ही माया कहते है |

ज्ञान से यदि संपूर्ण जगत ब्रह्मरूप हो जाता है तो इतना छोटा चिदाभास ब्रह्मरूप क्यों नहीं होगा? ज्ञान की दृष्टि से सब ब्रह्मरूप है | अज्ञानी मनुष्यो को ज्ञानी का देह और ज्ञानी का व्यवहार दिखता है तो वो प्रमाण नहीं |

अभी के सापेक्षवाद का सायन्स इतना आगे बढ़ गया है की भुत- भविष्य का विचार करना अथवा प्रारब्ध को सत्य मनना ये मुर्खता है | जिव और जगत दोनों सुषुप्ति में चले जाते है | उसे संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध की प्रक्रिया में डालना ये गलत रीती है | कल का जगत आज नहीं आता है | कल कल को आज कहते थे और आज को आनेवाला कल कहते थे वो आज हो गया | इसलिए कल का जगत आज नहीं आया है, परन्तु मनुष्य स्वयं कल के जैसा रहता है और परिणाम (succession) सच्चा मानते है तो उसे भूतकाल याद आता है, पर स्वप्न के परिणाम की भ्रान्ति की जैसे जाग्रत का परिणाम झूठा है |

इसलिए सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत छोड़कर दृष्टि- सृष्टिवाद की रीत पकड़ना चाहिए | दृष्टि- सृष्टिवाद में दृष्टि पहले सृष्टि नहीं | स्वप्न के दर्शन के पहले स्वप्न नहीं और जाग्रत के दर्शन के पहले जाग्रत नहीं | परिणामवाद की तरह दृष्टि- सृष्टिवाद नहीं समझमे आएगा | दृष्टि- सृष्टिवाद में शुरुवात से ही संपूर्ण अवस्था का विचार है और वो विवर्त है | उसमे succession याने परिणाम नहीं पर ज्ञान स्वयं ही भोक्ता और भाग्य बन जाता है | उसमे नयी शुरुवात है और विवर्त होने से ज्ञान तुरंत ही स्वयं के स्वरुप में आ जाता है | रज्जू- साप को रज्जू होने में समय नहीं लगता है |

ब्रह्मज्ञानी के लिए सभी रूप स्वयं के है | इसलिए Objectification नहीं होता है और सब काल स्वयं का है इसलिए Temporalisation नहीं होता है; इसलिए उसके लिए संचित, क्रियमाण या प्रारब्ध कर्मो का विचार नहीं रहता है |

विवर्तवाद की तरह कर्मो का कर्ता प्रमाता अथवा चिदाभास है और वो भी ब्रह्म का विवर्त है| ज्ञान होने के बाद कर्ता, भोक्ता- प्रमाता नहीं रहता है | तो प्रारब्ध का भोक्ता कौन होगा?

दृष्टि- सृष्टिवाद की तरह से तिन प्रकारके कर्म नहीं कारण की भुत या भविष्य नहीं | दृष्टि- सृष्टिवाद में अंदर से बाहर आना है | दर्शन काल में ही प्रतीति है, उसमे से संपूर्ण जाग्रत अवस्था बनती है और वो सुषुप्ति में और मद, मूर्च्छालय में चली जाती है, और ज्ञानदशा में भी लय हो जाती है | उस अवस्था में बहोत से जीवो का विचार नहीं और काल बदल जाता है | स्वप्न में दिखती जीवो की जन्म तारीख अलग अलग नहीं होती है | वहा संपूर्ण अवस्था का जीवन स्वप्न- दृश्य के प्रमाण ऊपर होता है, वो आपसी (परस्पर) संबंध के उपर रहे हुए है | वहा मायिक मनुष्य है और मायिक संबंध है | जाग्रत में भी ऐसा ही है | बुद्धधर्म में उसे dependent origination कहते है | रशिया का ज्ञानी और योगी पुरुष जुरडिफ उसे Reciprocal maintenance कहते है | जर्मन तत्ववेत्ता केसिरर उसे Relational thinking कहते है | श्री शंकराचार्य उसे मायिक उत्पत्ति कहते है |

विनोबाजी कहते है की :- Life is lived always in relationship

स्वप्न में रहा हुआ जिव जगता है तो स्वप्न में रहे हुए सभी मनुष्य लय हो जाते है कारण की संपूर्ण अवस्था मायिक है | जाग्रत में भी ऐसा ही है | बहोत से मनुष्य की सेवा करने की वृत्ति सेवक को ब्रह्म होने नहीं देगी पर उसे मनुष्य के जैसा बनाएगी | जाग्रत में दिखते मनुष्य स्वप्न में साथ नहीं आते है और ब्रह्म दशा में रहते नहीं | सुषुप्ति में भी वो नहीं | दुसरे दिन सुबह उठते ही जो दिखता है वो दृष्टा के दर्शन के अंदर है और सब अविनाभाव संबंध से रहते है | इसलिए ज्ञान होते ही सब चिन्मय बन जाता है |

वाणी दृष्टा (subject) और दृश्य (object) को पकड़कर रखती है और प्रतिभासिक सत्ता को व्यावहारिक बना देता है | देवलोक में देव का नाम रखा याने की देव का रूप और उसके भक्तो का रूप बंध जाता है | स्वप्न के मनुष्य के साथ बात किया याने वो मनुष्य सच्चा हो जाता है | उस रूप को भूतकाल या भविष्यकाल नहीं होता है | फिर भी वाणी उसे परिणामवाद में ला देती है | अभी का सापेक्षवाद का विज्ञान कहता है की जाग्रत अवस्था का भूतकाल और भविष्यकाल सच्चा नहीं कारण की वो मिथ्या दर्शन के ऊपर टिके हुए है | किसी राजा की शोभायात्रा रस्ते के ऊपर चल रही हो तो एक गली के लोग कहते है की शोभायात्रा गयी, दूसरी गली के लोग कहते है की शोभायात्रा आयेगी और राजा के लिए शोभायात्रा आयी नहीं या गयी नहीं | उसी तरह से ब्रह्मदशा में काल नहीं प्रत्येक दर्शन में देखनेवाला स्वयं की अवस्था बताता है | एक ही शोभायात्रा की घटना को कोई गयी कहता है कोई आ रही है कहता है तो वो शोभायात्रा की बात नहीं पर देखने वाले का स्थानधर्म बताता है | वो समकाल प्रतीति रूप होता है | जाग्रत अवस्था इसी तरह से ही बनती है, इसलिए संचित कर्म, क्रियमाण कर्म अथवा प्रारब्ध कर्म का विचार करना व्यर्थ है | जो जिव दर्शन के वक्त (स्वप्न के जैसे) नया बनता है (भागवत 11-22-39) उसे भूतकाल के संचित कर्म और भविष्यकाल के प्रारब्ध कर्म नहीं लग सकते है |

कार्य- कारण की रीत दृष्टि- सृष्टिवाद में नहीं चलती है | उससे सच्चा दर्शन नहीं मिलता है| दृष्टि- सृष्टिवाद में ज्ञान और ज्ञेय अलग नहीं | उनको भुत या भविष्य नहीं | जो दिखता है उसमे देखनेवाले का कोई स्वार्थ दिखता है और वो वाणी से पकड़ रखे तो प्रतिभासिक सत्ता में से व्यावहारिक सत्ता तैयार हो जाती है | फिर भी जैसे स्वप्न अंदर से दिखता है वैसे जाग्रत अंदर से दिखता है उसे form अथवा internal structure कहते है |

पुनरावृत्ति से भी प्रतिभासिक सत्ता व्यावहारिक बनती है | मै यहाँ बैठकर सामने की दिवार पर कोई दाग देखू और थोड़े समय के बाद कहू की अभी भी वो वहा है तो इसका अर्थ ये हुआ की थोड़े समय पहले मेरी इन्द्रियों में जो देखने का ज्ञान (impression) था वैसा ही ज्ञान अभी भी है, उसे ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ है, प्रतिभासिक घटनाकी आवृत्ति नहीं होती है, पर मनुष्य खुद का मतलब (symbol) उसमे डालता है और वाणी से उसे पकड़कर रखता है और बाद में उसकी आवृत्ति करता है, इसलिए प्रारब्ध सच्चा लगता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में सब कुछ expressive है इसलिए प्रत्येक समय स्वप्न के जैसे नया जगत रहता है | उसमे आवृत्ति नहीं होती है |

प्रकरण - 8

दृष्टा और साक्षी

दृष्टा और साक्षी के स्वरुप का वर्णन वेदांत में बार बार आता है, जैसे की :-

1) मै तिन देह का दृष्टा हु |

2) मै पाच कोष से अतीत हु |

3) मै तिन अवस्था का साक्षी हु |

ऊपर बताई प्रक्रिया पर ज्यादा विचार करने की जरुरत है | दृष्टा के सामने दृश्य चाहिए | और साक्षी के सामने साक्ष चाहिए | जहा तिन देह के दृष्टा की बात आती है तो वहा तिन देह को स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह कहते है | पंचीकृत पंच महाभूत से स्थूल देह तैयार होता है | उसका अनुभव जाग्रत अवस्था में होता है उसे जाननेवाला मै घट- दृष्टा के जैसे अलग हु | घट को जाननेवाला जैसे घट से अलग है वैसे ही देह जाननेवाला देह से अलग है | उसे साक्षी भी कहते है | वो भी एक जगह पर ही होना चाहिए और वो एक जगह पर हो तो सांख्य के जैसे पुरुष हुआ | वेदांत का आत्मा ब्रह्मरूप

है और व्यापक है | वो घड़े से अलग नहीं रह सकता है कारण की वो व्यापक होने से घड़े की जगह पर भी है | और साक्षी को भी ब्रह्म कहते है | ये बात सत्य हो तो साक्षी भी घड़े की जगह पर है इसलिए साक्षी की जगह पहले खोजनी होगी | घड़े को जाननेवाला घड़े से अलग है ऐसा मानने में बिचमे खाली जगह रह जाती है | वो खाली जगह आयी कहासे? इस बात का विचार करना चाहिए | जैसे तिन प्रकारके कर्म के अंदर काल का पूर्ण विवरण नहीं मिलता है वैसे ही आत्मा और अनात्मा का विवेक करने में बिच की खाली जगह का पूर्ण विवरण नहीं मिलता है, इस बारेमे पूर्ण ध्यान देना जरुरी है |

जड़ के धर्म चेतन में नहीं रहते है, अनात्मा के धर्म आत्मा में नहीं रहते है | वो अनुभव लेने के लिए दृष्टा का भाव अथवा साक्षी का भाव जानना जरुरी है | पर वो सांख्य के प्रकृति- पुरुष के जैसे ही हुआ | यदि आत्मा और अनात्मा ऐसे दो पदार्थ रहते है तो द्वैत होता है और उन दोनों को एक किया जाय तो आत्मा विकारी होता है | इसलिए माया का स्वरुप ठीक समझने की जरुरत है, याने की मायिक भेद और वास्तव में अभेद से सभी व्यवहार हो सकते है |

मायिक भेद के तिन अर्थ निचे बताये नुसार हो सकते है :-

1) अपने सामने संपूर्ण दृष्य रहा हुआ है | उसमे पेड़, पशु, पक्षी, नदी आदि दिखते है | उसमे दृश्य से शुरुवात्त है | इस दशा में बहोत से मनुष्य होते है | वो मात्र दृष्य को देखते है |

2) मै यहाँ बैठा हु, इसलिए मुझे सामने का दृष्य दिखता है | जिस ज्ञान से दृष्य दिखता है उस ज्ञान से मै भी यहाँ बैठा हुआ हु ऐसा मानकर खुद की जगह से शुरुवात करना वो भी एक प्रकारकी माया है |

3) यहाँ बैठकर मै जिस ज्ञान से जगत को देख रहा हु; उसमे मेरा मतलब, इच्छा, इष्टत्व आदि मिले हुए है | इसलिए सब को जगत एक जैसा नहीं दिखता है | उसमे दर्शन के अनुसार दृष्य दिखता है वो भी एक प्रकार की माया है |

ऊपर की तीनो माया को जितने के बाद साक्षीरूप हो सकते है, नहीं तो साक्षी सांख्य के पुरुष जैसे रह जायेगा और साक्षी अनेक हो जायेंगे | साक्षी बहोत से वक्त मात्र साक्षी ती तरह नहीं रहता है पर न्याय करने लग जाता है | जभी श्रीकृष्ण ने कंस को मारने के लिए मल्ल के अखाड़े में प्रवेश किया तभी उस मल्ल को वज्र जैसे लगे | यहाँ साक्षी न्यायाधीश हुआ है | जगत कैसा है उसके लिए बहोत से लोग न्याय देने लग जाते है, पर ऐसा करने के लिए साक्षी भाव नहीं रहता है | साक्षी का काम देखना है अथवा जो देखा होता है उसे कहना है | वो यदि न्याय करने लगे तो साक्षी के तरह नहीं रहता है | इसलिए वेदांत में विवेक के साथ वैराग्य की जरुरत मानी हुयी है | तत्वज्ञान के साथ वासनाक्षय और मनोनाश की भी जरुरत मानी हुयी है |

वेदांत में अनात्मा को अध्यस्त माना हुआ है और अध्यस्त की निवृत्ति अधिष्ठान रूप मानी हुयी है | इसलिए अनात्मा सांख्य की प्रकृति के जैसे कोई पदार्थ नहीं | ये बात ठीक तरह से समझा जाय तो जगह का प्रश्न ही नहीं रहता है | दृष्टा का शरीर भी अध्यस्त है इसलिये वो भी कोई जगह नहीं लेता (घेरता) है | अध्यस्त वस्तु को कोई काल भी नहीं लागु होता है | रज्जू- साप की उत्पत्ति के लिए अथवा उसके लय होने के लिए कोई काल की जरुरत नहीं पड़ती है |

साक्षी के अनुभव के बाद साक्षी की और साक्ष्य की जगह अध्यस्त करना चाहिए, नहीं तो सांख्य के जैसा विवेक होगा और सांख्य के पुरुष जैसे साक्षी होगा | उसके लिए देह का अभिमान जाना चाहिए | देह बैठता है तो नहीं मानना चाहिए की मै बैठा हु और देह उठ जाय तो नहीं मानना चाहिए की देह उठ गया | यदि खुद कोई जगह लेगा तो सामने की चीजे भी कोई जगह पर रही हुयी लगेगी और साक्षी का अनुभव नहीं टिक सकेगा |

स्वप्न के वक्त स्वप्न जाग्रत है, पर उसमे साक्षी का अनुभव नहीं | वहा उस वक्त चीज और मनुष्य दिखते है फिर भी वास्तव में वो सब एक ही ज्ञान के अलग अलग रूप है | स्वप्न में दिख रहे मनुष्य अलग अलग तारीख पर नहीं जन्म लेते है, स्वप्न में से जागने के बाद वो स्वप्न लगता है और संपूर्ण अवस्था अध्यस्त थी ऐसा लगता है और मै उसका साक्षी था ऐसा लगता है | जागने के बाद जाग्रत की चीजे दिखती है तभी साक्षी भाव चला जाता है | उस वक्त खुद को एक जगह पर रखता है और नयी माया शुरू हो जाती है | वो माया मनुष्य को सृष्टि- दृष्टिवाद में धकेल देती है और नया स्वप्न शुरू हो जाता है | उस वक्त मै साक्षी हु ऐसा भान नहीं रहता है | और जाग्रत दशा में खुद का विकास करने की इच्छा होती है तब काल भी उत्पन्न हो जाता है विकास से आत्मा बढ़ता नहीं | इसलिए दृष्टि- सृष्टिवाद की रीत ही अपनाना चाहिए | दृष्टि- सृष्टिवाद में सभी खेल एक ज्ञान का ही है | उसमे सांख्य के जैसे चीजो का विचार अथवा कारण- कार्य की रीत उपयोगी नहीं होगी | दृष्टि- सृष्टिवाद में पहले ज्ञान का पृथःकरण करना चाहिए और बाद में एकीकरण करना चाहिए | इस

दृष्टि से देखा जाय तो ज्ञान और ज्ञेय तथा उनका भेद और देश तथा काल सब एक ज्ञान में से ही बनता है | जैसे स्वप्न में घटित होता है वैसा ही जाग्रत में घटित होता है | रज्जू- साप में मुख्य ज्ञानाध्यास है और वो ही अर्थाध्यास का रूप ले लेता है | वो दर्शन की माया है पर बहोत से लोग उसे दृष्य की माया समझते है और बाद में उसमे से निकलना बहोत मुश्किल लगता है| बहोत से मनुष्य ऐसा मानते है की जगत में दिखने वाली वस्तुए और सामने दिखनेवाले मनुष्य अलग अलग वक्त पर उत्पन्न हुए है, पर ये बात सत्य नहीं | उसमे देश- काल की माया मनुष्य को भूल में रखती है | ये दशा में साक्षी का अनुभव नहीं | पर संपूर्ण जाग्रत अवस्था साक्षी- भास्य है, कारण की वो सुषुप्ति में, स्वप्न में और मद- मूर्च्छा में चली जाती है | जाग्रत अवस्था मनुष्य की बनायीं हुयी है | संपूर्ण जाग्रत अवस्था समझने में चीजो का विचार और कार्यकारण की प्रक्रिया उपयोगी नहीं | वो संपूर्ण दशा विवर्त है | सांख्य की प्रक्रिया वेदांत में नहीं चल सकती है |

रज्जू भी है और साप भी है | ये दोनों बात साथ में नहीं चलेगी | जगत और ब्रह्म दोनों साथ में नहीं रह सकते है | ये द्वैतपना दूर नहीं होगा तब तक विचार शुद्ध नहीं होंगे | साक्षी को ब्रह्मरूप होना हो तो साक्ष्य का आभाव करना चाहिए अथवा उसे अधिष्ठान में अथवा ज्ञान में समां लेना चाहिए | अर्थाध्यास ये सत्यता से ज्ञानाध्यास है याने की ज्ञेय ये ज्ञान का रूप है, याने की ज्ञेय ज्ञानसे अलग नहीं | जो प्रमाण अज्ञात- ज्ञापक होता है और अबाधित अर्थ को अथवा अखंड अर्थ को बताता है, वो सच्चा प्रमाण है |

ठुठ में पुरुष देखकर विचार करना ये भी सच्ची रीत नहीं, उसमे दृष्टा- दृश्य की बिच की जगह का खुलासा (विवरण) नहीं होता है | इसलिए चीज का विचार छोड़कर अवस्था का विचार करना चाहिए | उसके लिए दृष्टि- सृष्टिवाद की रीत ज्यादा अच्छी है | इस रीती से संपूर्ण दृश्य का निषेध होता है अथवा ज्ञेय ज्ञानरूप होता है |

प्रकरण : 9

पितृलोक और देवलोक

शाश्त्र में कहा हुआ है की कर्म से पितृलोक मिलता है और विद्या से देवलोक मिलता है | वो आंख से नहीं देख सकते है | उसमे मात्र शाश्त्र प्रमाण है और रुढी प्रमाण है | मुस्लिम धर्म में, ख्रिस्ती धर्म में और दुसरे कितने ही धर्म में पितृलोक एवं देवलोक मानने में आया है हिन्दू धर्म के अनुसार सात लोक ऊपर और सात लोक निचे है | उनके नाम और उनकी व्यवस्था शाश्त्र में दि हुयी है | वो आंख से नहीं देखे जाते है और उनके बारेमे अलग अलग शाश्त्रो में अलग अलग रीती से वर्णन दिया हुआ है दृष्टान्त के अनुसार देखा जाय तो वेद के मंत्र भाग में मुख्य देव इंद्र है, भागवत में मुख्या देव भगवान है, उपनिषद् में मुख्य देव ब्रह्म है | याने की जैसे जैसे दर्शन की माया हो वैसा रूप एक ही तत्व ग्रहण करता है |

ब्रह्म पानी में जाता है तो उसे मछली होना पड़ता है, ब्रह्म को एक ही जगह पर रहना है तो उसे पेड़ होना पड़ता है, चार पैरो से चलना है तो पशु होना पड़ता है | घर में बस्ती बढ़ाना हो तो शुक्राचार्य होना पड़ेगा, म. गांधीजी को दुसरे जन्म में गरीबो की सेवा करने हेतु उच्च घर में जन्म लेने की इच्छा थी | अनेक प्रकारकी इच्छाए और कर्म से अनेक प्रकारकी माया से बहोत से लोक तैयार होते है |

माया में से अपने भावना के अनुसार नए नए लोक रचे जाते है | तेज को माया में लाने से ऐसी रचना होती है, इसलिए ज्योतिष शाश्त्रवाले कहते है की मनुष्य के जीवन ऊपर ग्रह- देवता की भी असर दिखाई देती है | भावना को जितना ये बहोत ही मुश्किल काम है | खास देखा जाय तो अज्ञानी मनुष्य में बहोत प्रकारकी भावनाए उत्पन्न होती है | वो मरने के बाद भी रहती है | उनको संतोष देने के लिए अनेक प्रकारके लोक चाहिए | उसमे अलग अलग प्रकारकी माया का बंधन है | अंदर का जगत और बहार का जगत भी माया से उत्पन्न होता है | और जब भी मात्र बहार का जगत दिखता है तभी माया का जोर बढ़ता है | लाप्लेईस नाम के वैज्ञानिक ने एक बड़ी दूरबीन बनायीं और वो आकाश तरफ मोड़कर वहा भगवान की खोज करने लगे पर भगवान नहीं दिखाई दिए | सच देखा जाय तो उसे दूरबीन का जो एक भाग उसके आंख के सामने था वहा खोज करने की जरुरत थी, याने की खुद का और जगत का संबंध कैसा है ये जानने की जरुरत थी |

देवलोक में सभी तेज का खेल है | वहा चीजो का विचार नहीं पर शक्तिओ का विचार है | इस बात का विवरण देवी पूरण में मिल सकता है | वहा अँधेरा दिखने लग जाय तो जिव को ऐसा लगने लगता है की कोई आसुर लोग हमला करने के लिए आये है | पिला तेज तमोगुण बताता है | वास्तव में जिस जिव में जैसी भावना होती है और जैसा ज्ञान

होता है वैसा ही रूप तेज में से तैयार होता है और भावना के अनुसार भावना के अनुसार वैसा काल भी बन जाता है | जैसे स्वप्न में घटित होता है वैसे ही देवलोक में घटित होता है | मुख्य मुश्किली ये होती है की स्वप्न खुद ही बनाया होता है इस बात कोई पता नहीं चलता है और देवलोक भी खुद ही बनाया होता है उसका भी पता नहीं चलता है | देवलोक ये दृष्टि-सृष्टिवाद का अंग है | देव का अर्थ द्युति अथवा तेज होता है | उसे प्रसन्न करने के लिए पारसी लोग अग्नि की पूजा करते है | हिन्दू भी गायत्री के द्वारा सूर्य की उपासना करते है और दुसरे धर्मो में भी तेज की उपासना है |

जैसे स्वप्न में बार बार नए नए घटनाए या देखाओ आते है वैसे ही देवलोक में भी भावना के अनुसार तैयार होते है | देवलोक में और स्वप्न में नए प्रमाण तैयार होते है | उसे मनुष्य के प्रमाण से नहीं समझ सकते है | तंत्र शाश्त्र में माया शक्ति को विमर्शशक्ति कहते है और प्रकाश शक्ति को स्वरुप शक्ति कहते है |

इच्छा का दबाव माया का रूप ले लेता है | देवलोक में इन्द्र दिखता है या विष्णु या शिव दिखता है अथवा पितृ दिखते है तो वो देखनेवाले की माया है | जैसे मनुष्य को खुद का नाम अच्छा लगता है वैसे ही खुद के देव का भी नाम अच्छा लगता है | वाणी और नाम में बहोत शक्ति है और वो उसके देव के रूप के साथ एकरूप होकर रहता है | देवलोक और पितृलोक तेज से बने होने के कारण कोई भी दृश्य में से दूसरा दृश्य बना सकते है | प्रमाण बदल जाता है तो तुरंत ही दूसरी दशा उत्पन्न हो जाती है |

वेदांत में देवलोक को सच्ची दशा नहीं कहा गया है | महावाक्य के बोध से जिव यहाँ पर ही ब्रह्मरूप हो जाता है | इसलिए उसे देवलोक दिखता नहीं अथवा दिखता भी है तो ज्ञानी पुरुष उसे मिथ्या मानते है | पर जिनमे ज्ञान से भावनाओ का जोर ज्यादा है उनके लिए भावनाओ के संतोष के लिए देवलोक दिखता है | भावनाओ को जितना हो तो जो दृश्य दिखता है उसमे मोह नहीं होना चाहिए | अपना और दृश्य का संबंध समझने की आदत कर लेना चाहिए | ऐसी आदत स्वप्न में नहीं पड़ सकती है इसलिए वहा भूल का पता नहीं चल सकता है | वहा ऐसी विवेक बुद्धि नहीं | देवलोक में भी संबंध के विचारवाली विवेक बुद्धि नहीं | देवलोक ये भी स्वप्न के जैसे भोग का लोक है और भावनाओ का लोक है | देवलोक में विवेक बुद्धि ना होने से आत्मज्ञान के लिए देवो को भी मनुष्य का जन्म लेने की इच्छा होती है | जैसे रेडिओ में अलग अलग व्यवलेंथ के अनुसार अलग अलग रूप दिखते हा वैसे ही देवलोक में भी होता है | मरते वक्त मनुष्य की शक्ति कम होती है अथवा छिन्न- भिन्न हो जाती है, और वो शक्ति बाद में एकत्रित होकर उसके कर्म के अनुसार अथवा भावनाओ के अनुसार देव लोक तैयार करता है | ज्ञानी पुरुष ज्ञान से भावनाओ को जीतते है इसलिए उनके लिए देवलोक अथवा पितृलोक की जरुरत नहीं | जब तक ब्रह्म के सिवा दूसरी वस्तु में सुख बुद्धि है तब तक भावनाओ को नही जीता जा सकता है | बहोत से मनुष्य में विचार शक्ति मंद होती है इसलिए वो भावनाओ के वश हो जाते है | हड़ताल के वक्त अथवा लढाई के वक्त उसका स्वरुप स्पष्ट दिखाई देता है | देवलोक में भी राग- द्वेष होता है | अलग अलग प्रकारके तेज के किरणों से वहा भी सात्विक, राजस और तामस अहंकार उत्पन्न होता है |

देवलोक का इतिहास बहोत से धर्मो में माना हुआ है | वहा भाषा भी है, पर प्रत्येक प्रजा खुद की भाषा उपयोग करती है और उनके देव उनकी भाषा में जवाब देते है तोही वहा का व्यवहार चल सकता है, मलयालम भाषा वाले को स्वप्न आता है तो स्वप्न में दिखते दुसरे लोग भी वोहो भाषा में बात करते होते है | देवलोक में भी ऐसा ही है | रेडिओ के तेज में से बहोत सी भाषा बन सकती है| सिनेमा में भी ऐसा ही घटित होता है | वहा नयी शुरुवात होती है मनुष्य ने रचा हुआ नाटक वहा नयी तारिके से बताया जाता है | मनुष्य की भावना ही तेज के अनुसार भोक्ता और भोग्य होता है | इसी तरह से ज्ञान के भाग होने से खुद के जानने योग्य ज्ञान बाकि नहीं रहता है | स्वप्न में भी ऐसा ही होता है | देवलोक में देव है, मनुष्य भी दिखाई देंगे बातचीत भी होगी पर वो स्वप्न के जैसा है | स्वप्न के वक्त स्वप्न भी झूठा नहीं लगता है, उसी प्रकारसे देवलोक और पितृलोक भी झूठे नहीं लगते है | फिर भी वहा नियति नहीं | स्वप्न में से एकदम जाग सकते है वैसे ही देवलोक में से भी जिव फिर से यहाँ आ सकता है | देवलोक में मरण ये नए जन्म के जैसा ही लगता है | वहा नए नए घटनाए उत्पन्न होती रहती है और वो जिव को मोह में डाल देते है | वहा विवेक नहीं इसलिए देवलोक से ऊपर जाना अथवा आत्मज्ञान पाना बहोत मुश्किल है | देवलोक में जो दिखता है वो दूसरी बहोतसी बाते ढक देता है, इसलिए वहा सत्य वस्तु का पता नहीं चलता है | और देव लालची होने से मनुष्य के पाससे यज्ञ की, पूजा की और प्रार्थना की आशा रखते है | माताजी को बुलानेवाला बुवा भगत खुद ही माताजी बन जाता है | इसलिए देव- देविओकी माया जितना ये बहोत मुश्किल काम है| जरा भी वासना रह जाय तो वो मनुष्य देवो का पशु बन जाता है | वो खुद ही देवो को उत्पन्न करके उसे

भोग देता है | वो जो जो कल्पना करता है वो पूरी होने लगती है | वहा छाया भी सच्चे पुरुष के जैसे काम करने लगती है और वो माया बन जाती है | वहा स्वप्न के जैसे सभी परस्पर संबंधी रहते है | इसलिए देव जीवो को पकड़कर रखते है और जिव देवो को पकड़कर रखते है | ये सब प्रतिभासिक होने से उसमे अंश- अंशीभाव नहीं बन सकता है | फिर भी स्वप्न के जैसे अविनाभाव संबंध से व्यवहार चलता है | वहा कार्य- कारण भाव चीज के बिच में नहीं पर घटनाओ के बिच में और बदलाव के बिचमे है |

देव और देविया और उनके भक्त के बिच ऐसा संबंध है की मनुष्य उनको खुश करने के लिए पशुओकी बलि देते है और देव- देविया उनके संसार के विघ्न दूर करते है | ऐसे मनुष्य बीमार होते है तब मानता रखते है | उनकी बीमारी किसी आसुर ने भेजी होगी ऐसा मानकर खुद के देवी की मानता रखता है | ये सब भावनाओ का विषय है | उसमे आत्मज्ञान की बात नहीं होती | आत्मज्ञान के लिए विचारसे भावनाओ को जितना चाहिए | भावनाओ में एक भाग संपूर्ण जीवन रोक रखता है | इसलिए मनुष्य को खुद का भान नहीं रहता है | देवलोक में जगह और काल नया बनता है | उससे नए संबंध होते है और वो अविनाभाव से रहते है | भावनाओ का तत्व मनुष्य को झूठी भूल में डाल देते है | स्वप्न में, जाग्रत में और देवलोक में भावना मनुष्य को गलत रास्ते ले जाती है, इसलिए उसकी शुद्धि करना बहोत जरुरी है | काग्रेस पार्टी, प्रजासमाजवादी, साम्यवादी ये सब ऐसे भावना का विषय है की जिसमे आत्मज्ञान की बातो के लिए कोई समय ही नहीं है | देवलोक में भी तेज के प्रकार के अनुसार अलग अलग लोक बन जाते है | जिन लोगो में भेद कम, वो ऊपर का लोक कहलाता है और जिसमे भेद ज्यादा वो निचे के लोक कहलाते है | यहाँ भी भावना ऐसा रूप लेती है की देश भक्ति में अथवा खुद के संघ की वफ़ादारी में सभी सुख समां जाता है | ऐसे मनुष्य को ब्रह्मज्ञान की कीमत नहीं | मुख्या भावना और सच्ची भावना सर्वात्मभाववाली होती है और उसके लिए ब्रह्मज्ञानकी जरुरत पड़ती है |

प्रकरण : 10

कारण- कार्य भाव

कार्य देखकर कारण का विचार आता है | जगत को देखकर जगत के कारण का विचार आता है | सांख्य दर्शनवाले कहते है की जगत का कारण मूल प्रकृति है | वो तिन गुनोवाली है और जगत को रचती है | गीता में और भागवत में कहा हुआ है की भगवान की सत्ता से प्रकृति काम करती है | इसलिए सांख्य के जैसे प्रकृति को स्वतंत्र सत्ता नहीं | ब्रह्म सूत्र में जगत का कारण ब्रह्म बताया है |

जहा समसत्ता हो वहा कार्य- कारणभाव बनता है याने कारण और कार्य दोनों व्यावहारिक सत्ता में होता है तो कार्य- कारण भाव बनता है | पर विषम सत्ता में कार्य- कारण भाव नहीं बनता है | जैसे की स्वप्न के बिज में से स्वप्न का पेड़ बनता है जाग्रत का पेड़ नहीं होता है और जाग्रत के बिज में से स्वप्न का पेड़ नहीं हो सकता है इसलिए ब्रह्म में से जगत बनता है तो ब्रह्म की और जगत की सत्ता समान होना चाहिए पर ब्रह्म नित्य है और जगत अनित्य है | वो दोनों एक ही सत्ता वाले नहीं, इसलिए ब्रह्म में से जगत किस तरह से बना इस बातका विस्तृत विवरण इस तरह से नहीं मिलता है | श्री शंकराचार्य कहते है की ब्रह्म में माया के द्वारा जगत की प्रतीति होती है, इसलिए जगत ये ब्रह्म का विवर्त है याने की ब्रह्म ही जगत रूप से दिखाई देता है, जगत ये ब्रह्म का परिणाम नहीं कारण की दोनों समसत्ता में नहीं | स्वप्न की माया को स्वप्न के दृष्टा के साथ संबंध है| और जाग्रत की माया को देखनेवाला को जाग्रत दशा के साथ संबंध है | दोनों का काल अलग होंने से जाग्रत और स्वप्न के बिच अथवा जाग्रत और सुषुप्ति के बिच संबंध नहीं होता है |

फिर भी मंदुक्य की कारिका में (पहले प्रकरण में) निचे बताये हुए श्लोक में श्री गौड़पादाचार्य तिन अवस्था के बिच कार्य- कारणभाव है ऐसा बताया हुआ है :-

कार्य- कारण बद्धौ ताविष्यते विश्व तैजसो |
प्राज्ञः कारण बद्धस्तु द्वौ तौ तुये न सिध्यतः || 1-11

अर्थ :- जाग्रत का अभिमानी विश्व और स्वप्न का अभिमानी तेजस कार्य- कारण भाव से बंधा हुआ है | और सुषुप्ति का अभिमानी प्राज्ञ मात्र कारण से बंधा हुआ है | इसका अर्थ ये हुआ की सुषुप्ति में कारण रूप अज्ञान है | जाग्रत में

कारण रूप अज्ञान है और कार्यरूप जाग्रत अवस्था दोनों भी है और स्वप्न में कारण रूप अज्ञान है और कार्य रूप स्वप्न अवस्था दोनों भी है |

ये प्रक्रिया बाद के विद्वानों ने स्वीकार की है पर वो ठीक नहीं | श्री गौड़पादाचार्य भी माण्डुक्य कारिका के चुठे प्रकरण में कार्य- कारणभाव निचे बताये नुसार तोडा है :-

कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते |
जायमानं कथमज भिन्नं नित्यं कथं च तत || 4-11

अर्थ:- जिसके (सांख्य मतावलंबी) मत में कारण ही कार्य है उस सिद्धांत के अनुसार कारण ही उत्पन्न होता है, परन्तु यदि कारण का जन्म होता है तो वो अजन्मा (प्रकृति) किस तरह से हो सकता है? और उसका विकार होने के बाद वो नित्य किस तरह से रहता है?

कारणाद्यद्यनन्यत्वं अतः कार्यमजं यदि |
जायमानाध्दी वै कार्यत्कारणं ते कथं ध्रुवं || 4-12

अर्थ:- जिस कारण से कार्य की अभिन्नता है तो कार्य भी अजन्मा होता है और ये बात सत्य हो तो उत्पन्न होनेवाले कार्य से अभिन्न कारण भी निश्चल किस तरह से रह सकता है?

अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्तस्यस्य नास्ति ये |
जाताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते || 4-13

अर्थ:- जिसके मत में अजन्मा वस्तु से कोई कार्य की उत्पत्ति होती है उसके पास सच देखा जाय तो कोई दृष्टांत नहीं और जात पदार्थ से ही कार्य की उत्पत्ति मानी जाय तो अवस्था उत्पन्न होगी |

हेतु और फल में पहला क्या वो नहीं कह सकते है, इसलिए अजातवाद सिद्ध होता है | संस्कार के अनुसार ज्ञान और ज्ञान के अनुसार संस्कार, उसमे पहले किसको लेना ये निश्चित नहीं समझ सकते है | पुण्य- पाप से धर्म- अधर्म और धर्म- अधर्म से पाप- पुण्य ऐसी परंपरा में भी पहले किसको लेना ये निश्चित नहीं कह सकते है | सुषुप्ति कारण और जाग्रत कार्य ऐसा यदि समझे तो भी जाग्रत के बाद सुषुप्ति आती है | इसलिए कार्य के बाद कारण आता है तो वो भी इष्ट नहीं | इसलिए कार्य- कारण भाव की रीत सत्य नहीं; फिर भी कार्य- कारणभाव मानना हो तो ऊपर बताये नुसार एक अवस्था में कार्य- कारणभाव बन सकता है याने की जाग्रत अवस्था के कार्य का कारण जाग्रत अवस्था के सिवा नहीं मिल सकता है | और जाग्रत अवस्था भी ज्यादा समय नहीं चलती है | वो मद, मूर्च्छा और कल्पना में तुरंत ही चली जाती है |

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तिनो दशा का काल अलग है | ये तीनो अवस्था के बिच में परस्पर संबंध नहीं, इसलिए सुषुप्ति में कारण अविद्या है और जाग्रत और स्वप्न में कार्य अविद्या है| ये सिद्धांत सत्य नहीं | ब्रह्म में कार्य- कारणभाव डालना ये भी ठीक नही और अविद्या में कार्य- कारणभाव डालना वो भी ठीक नहीं | श्री शंकराचार्यके वेदांत में विवर्तवाद है | उसे कार्य- कारणभाव से समझाना ये पद्धति भी ठीक नहीं | कार्य- कारण की पद्धति ये सांख्य दर्शन की रीत है | वो वेदांत में नहीं चलेगी | कार्य- कारणभाव में समसत्ता चाहिए और समसत्ता में परिणाम वाद आ जाता है | विवर्तवाद में विषम सत्ता की बात आती है, और विषम सत्ता में कार्य- कारणभाव नहीं बनता है | रज्जू में साप नहीं तो साप का कारण खोजने की जरुरत नहीं |

अभी का सायन्स भी कहता है की Causation is not continuous in unrelated system याने की विषम सत्ता में कार्य- कारणभाव बनता ही नहीं |

कई बार ब्रह्म को जगत का निमित्त कारण वैसे ही उपादान कारण कहने में आता है | कारण की दूसरी सत्ता नहीं | ये सामन्य मनुष्य को अद्वैत में लाने के लिए है और सांख्य का स्वतंत्र- प्रकृति- कारणवाद तोड़ने के लिए है | बाद में उपादान कारण कार्य अंदर जाता है और निमित्त कारण दूसरा रहता है और उस कार्य का नियामक बनता है जहा कारण नियामक हो वहा वो नयी अवस्था तुरत ही बना देता है, इसलिए चीजो का विचार करने के बजाय अवस्था का विचार करना ये ज्यादा अच्छी रीत है | अवस्था माया में से बनती है और माया नियामक के आधीन रहती है | मात्र अविद्या का विचार करे तो वो उपादान कारण बनता है और अविद्याका आश्रय का विचार लिया जाय तो निमित्त कारण के पहले विचार में आता है | ब्रह्मको निमित्त कारण लिया जाय तो नाटक के जैसे सब खेल सूत्रधार के आधार पर रहता है |

निष्काम कर्म, सेवा, कला, भक्ति, ज्ञान ये सब स्वयं के स्वरुप के तरफ मोड़ने का साधन है| नाटक में नट

खुद को न भूल जाय उसके लिए ये सब साधन है | नाटक का लेखक नाटक लिखते वक्त खुद हो खुद के ज्ञान से नया नया रूप ले लेता है, और उसके संबंध नाटक में जताने के लिए खुद ही हर्ष और शोक को प्राप्त होता है | जाग्रत में जहा दुसरे का दुःख देखकर रोना आता है वहा एक ही चैतन्य दो रूप ले लेता है | खुद खुद के अनेक रूप देखना ये नाटक की शुरुवात है और अनेक रूप मेरे ही बने हुए है ऐसा ज्ञान होता है तब नाटक पूर्ण होता है | स्वप्न में से उठते वक्त ऐसा होता है |

जैसा मै स्वप्न में था वैसा मै जाग्रत में हु इस अनुभव के ऊपर विचार करने की जरुरत है| स्वप्न के वक्त वो स्वप्न नहीं पर जाग्रत है और जागने के बाद जो बोलता है वो स्वप्न का अभिमानी तेजस नहीं पर जाग्रत का अभिमानी विश्व है | जो मै सुषुप्ति में था वो ही मै जगा हु ऐसा कौन बोलता है? ये सुषुप्ति का अभिमानी प्राज्ञ नहीं बोलता है, पर जाग्रत का अभिमानी विश्व बोलता है | उसे संबंध नहीं होता है फिर भी संबंध कर लेता है | वो संबंध साक्षीपना को लेकर होता है पर साक्षी निर्विकार है | संबंध का प्रश्न समझने के लिए माया का स्वरुप समझना चाहिए | उसमे भी देश- काल की माया समझना खास जरुरत है | यदि साक्षी ऐसा कहे की मुझे स्वप्न आया था तो वो साक्षी नहीं | तेजस को स्वप्न आया था और वो जाग्रत में नहीं रहा | एक दशा की माया में सब अविनाभाव संबंध से रहते है, इसलिए स्वप्न में साक्षीभाव नहीं पा सकता है |

प्रकरण : 11

तेज- सातवा प्रमाण

वेदांत में निचे बताये नुसार तिन सत्ता मानी हुयी है ;-

1) व्यावहारिक सत्ता

2) प्रतिभासिक सत्ता

3) पारमार्थिक सत्ता

व्यावहारिक सत्ता के लिए छे प्रमाण मिल सकते है, पर प्रतिभासिक सत्ता के लिए स्पष्ट प्रमाण नहीं मिल सकता है, इसलिए उसका विवरण इस प्रकरण में किया गया है | पारमार्थिक सत्ता प्रमाण- प्रमेय के विचार से अतीत रही हुयी है, फिर भी भक्तिमार्ग वाले उसे प्रार्थना का विषय बना लेते है |

व्यावहारिक सत्ता के लिए निचे बताये नुसार छे प्रमाण मिल सकते है | वो सृष्टि- दृष्टिवाद समझाने के लिए उपयोगी है और उसमे से पारमार्थिक सत्ता में भी आ सकते है :-

1) प्रत्यक्ष 2) अनुमान

3) उपमान 4) शब्द

5) अर्थापत्ति 6) अनूपलबद्धि

प्रत्यक्ष प्रमाण में नेत्रदिक कारण है | कारण की नेत्रदिक इन्द्रियों का खुद के विषयो में संबंध न हो तो प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हो सकता है |

अनुमान प्रमाण भी प्रत्यक्ष के आधार पर रहता है | पर्वत में धुव्वे का प्रत्यक्ष प्रमाण होता तब अग्नि का अनुमान होता है | उपमान प्रमाण में गाय के जैसा प्राणी देखकर गाय का अनुमान होता है, इसलिए वो भी प्रत्यक्ष के आधार पर रहता है | शब्द प्रमाण में श्रुति प्रमाण है | वो भी कान का विषय है | अर्थाप्राप्ति प्रमाण में मनुष्य के शरीर की स्थूलता देखकर वो जन्मा होगा ऐसा विचार आता है | अभाव में प्रतियोगी का अभाव देखकर विचार आता है | इसलिए ये पता चलता है की व्यावहारिक सत्तावाले छे प्रमाण सृष्टि- दृष्टिवाद के अंदर रहते है |

दृष्टि- सृष्टिवाद में प्रतिभासिक सत्ता है और दृष्टि पहले सृष्टि नहीं, इसलिए उसमे ऊपर के छे प्रमाण उपयोगी हो नहीं सकते है | दृष्टि- सृष्टिवाद का प्रमाण तेज है | और भौतिक शाश्त्र में उसकी गति एक सेकण्ड में 1,86,000 माइल है, फिर भी अभी विशेष रीती से ये सिद्ध हुआ है की जिस क्षेत्र में से तेज (किरण) पसर होता है उस के अनुसार उसमे देश-काल नया रचा जाता है | स्वप्न में जाग्रत के देश- काल और जाग्रत का तेज उपयोगी नहीं होता है | जाग्रत में

स्वप्न की वस्तु उपयोगी नहीं होती, पर जाग्रत के दर्शन के अनुसार याने की तेज के अनुसार जाग्रत अवस्था उत्पन्न होती है | कल्पना में भी दर्शन बदल जाता है, जैसे मुंबई में लोकल ट्रेन में बैठा हुआ मनुष्य दुसरे विचार में चला जाता है तो उसके खुद के स्टेशन पर नहीं उतर सकता है | उसके आंख का तेज बदल जाता है, और ऐसा तेज वैसी प्रतिभासिक सत्ता बन जाती है | इसलिए तेज ये सातवा प्रमाण है, और वो दृष्टी- सृष्टि में उपयोगी है |

वृत्ति प्रभाकर ग्रंथमे और वेदांत के दुसरे ग्रंथो में लिखा हुआ है की :-

1) सभी पदार्थ चेतन का विवर्त है और

2) अविद्याका परिणाम है |

उसमे घटादी अविद्याके तमोगुण का परिणाम है और घटादी का ज्ञान अविद्या के सत्वगुण का परिणाम है | इस प्रक्रिया में देश- काल का विचार स्पष्ट नहीं | घट को रखने की जगह निश्चित ना हो तब तक परिणाम नहीं होता है | स्वप्न में घटादी नहीं और उसका परिणाम भी नहीं | स्वप्न में संपूर्ण अवस्था प्रतिभासिक है और वो समकाल प्रतीति रूप है | जाग्रत में भी ऐसा ही है | स्वप्न में देश- काल नया होते है और स्वप्न के तेज के अनुसार होते है | जाग्रत में भी देश- काल नए होते है और वो आंख के तेज के अनुसार होते है | स्वप्न के वक्त स्वप्न भी जाग्रत के जैसा लगता है | प्रतिभासिक सत्ता समझने के लिए सातवा प्रमाण तेज का स्वरुप ठीक तरह से समझने जरुरी है | वो समझने से दर्शन की प्रक्रिया और दृष्टी- सृष्टिवाद ठीक तरह से समझमे आयेगा | अभी के सायन्स में सिद्ध हुआ हा की Light moves as space line instead of as straight line in space याने तेज स्वयं जरुर जितना जगह बना लेता है | देवलोक तेज का बना हुआ है और वहा जिव के दर्शन के अनुसार जगह बन जाती है, इसलिए किसी को वहा वैकुण्ठ दिखता है और किसी को कैलाश दिखता है| जाग्रत में एक ही श्री उसके पिता को छोटी लगती है और उसके पुत्र को बड़ी लगती है | ये प्रतिभासिक सत्ता का दृष्टांत है | उसमे तेज का प्रमाण काम करता है |

पुरानो में कहते है की संपूर्ण पृथ्वी जल में से उत्पन्न हुयी है | जल भी तेज का रूप है | शरीर में यदि गर्मी न हो तो वीर्य उत्पन्न नहीं होता है | कारण- कार्य भाव चिजो बिच में नहीं पर एक अवस्था में से दूसरी अवस्था तैयार होती है | परिणाम जहा दिखाई देता है वहा कारण- भाव रहता है और समान काल रहता है | वो व्यावहारिक सत्ता का विषय है | स्वप्न में प्रतिभासिक सत्ता है और जाग्रत के जैसा काल नहीं | तेज से नया काल बनता है स्वप्न में जो परिणाम दिखता है वो स्वप्न के बाहर नही | जाग्रत में ही परिणाम दिखता है वो भी जाग्रत के बाहर नहीं | अभी के सायन्स में ऐसा सिद्ध हुआ है की Causation is not continuous in unrelated system याने की जिस अवस्था में कार्य- कारण भाव रहता है वो दूसरी अवस्था में उपयोगी नहीं | दूसरी अवस्था में उस अवस्था के दर्शन के अनुसार नया देश- काल उत्पन्न होता है |

प्रतिभासिक सत्ता का आधार तेज है | वो सातवा प्रमाण है | स्वप्न का ज्ञान स्वप्न की क्रिया का प्रमाण है | उस ज्ञान से स्वप्न सिद्ध होता है, उससे स्वप्न की निवृत्ति नहीं होती है | इसलिए दर्शन बदलना चाहिए | उसके लिए बाधक ज्ञान की जरुरत है | जाग्रत के बाध के लिए भी दर्शन बदलना चाहिए और उसके लिए जाग्रत को बाध करे ऐसे ज्ञान की जरुरत है | रोज नए नए तेज से नया नया जाग्रत तैयार होता है, पर कल का चित्र आज के ज्ञान में चालू रहता है तो वो कल का संबंध बना लेता है |

वृत्ति पभाकर ग्रंथ में कहा हुआ है की दुसरे दिन दिखते जाग्रत के पदार्थ में बहोत काल की स्थिरता दिखती है वो भ्रान्ति है | वो व्यावहारिक सत्ता की रीत है | प्रतिभासिक सत्ता की दृष्टि से देखा जाय तो संपूर्ण जाग्रत अवस्था प्रतिदिन नयी होती है और वो जाग्रत अवस्था के तेज के अनुसार रहती है | प्रतिभासिक सत्ता के लिए तेज ये ही प्रमाण है, इसलिए तेज का स्वभाव ठीक तरह से समझना चाहिए | इसके लिए अभी के सापेक्षवाद के सायन्स में बहोत खुलासा मिल सकता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में छे प्रमाण की रीत नहीं चलती है | वृत्ति प्रभाकर पुस्तक में सभी पदार्थ की प्रतीति अविद्या समकालीन मानी हुयी है, फिर भी उससे भी अच्छी रीत ये है की संपूर्ण अवस्था नयी बनती है और वो दूसरी अवस्था में दुसरे दर्शन से अथवा दुसरे तेज से अथवा दुसरे ज्ञान से बाध हो जाती है| पदार्थ की प्रतीति के लिए पहले खाली जगह चाहिए और उसका खुलासा (विवरण) पहले करना चाहिए |

जहा आत्मा के तेज की बात आती है वहा महाप्रकाश समझना | उसके तेज से दुसरे प्रकाशित होते है | महाप्रकाश के लिए संपूर्ण जीवन शुद्ध करना चाहिए | महाप्रकाश को अंगेजी में Revelation कहते है | वो अधिकारी नित्य प्रकाश है | वो पारमार्थिक सत्ता का अनुभव है | वहा भेद का अभेद नहीं करना है पर भेद का निषेध करना है |

पारमार्थिक सत्ता के बारेमे अभी के मनुष्यो के मन में निचे बताये कितने ही प्रश्न उत्पन्न होते है, जैसे की :-

1) अमेरिका के प्रमुख को और हिन्द के पंतप्रधान को जैसे लोगो के मत की जरुरत पड़ती है वैसे ही भगवान लोगो की बहुमति के अनुसार जगत का राज्य करते होंगे? अथवा

2) हिन्द के पहले के राजोके जैसे लोगो को पूछे बिना जगत का नियंत्रण करते होंगे?

ज्ञानी पुरुषों के लिए अलग भगवान का प्रश्न ही नहीं रहता है, फिर भी उनमे भी कोई कवी हो वो भी जगत की नाम- रूप वाली माया में भी अधिष्ठान के रूप से ब्रह्म को देख सकता है और केवल ज्ञानी हो तो वो जगत के प्रपंच से रहित मात्र निर्गुण ब्रह्म का अनुभव करता है |

इसी तरह से ब्रह्म अपने जगत में मिल सकता है, तो भी उस ब्रह्म को कितने ही भविष्य में रखते है याने की कोई तो कर्म करेंगे तो ब्रह्म का साक्षात्कार होगा, ये रीत भी सत्य नहीं |

वेदांत का महावाक्य ‘ तत्वमसि ‘ कहते है की ब्रह्म भविष्य में नहीं | ‘ तू ‘ स्वयं ही अभी ब्रह्म है | ऐसा ज्ञान धारण कर लेना चाहिए |

प्रकरण : 12

देश और काल

देश याने की खाली जगह अथवा Space, वो आयी कहासे? दो वस्तु के बिच में जगह दिखती है | एक वस्तु को रखने के लिए भी जगह चाहिए | और जगह को देखनेवाला कोई ना हो तो जगह दिखती नही | गहरी निद्रा में जगह नहीं दिखती है | स्वप्न में जगह नयी हो जाती है और जाग्रत में जगह पहले से ही मौजूद है ऐसा लगता है पर उसमे भूल है | जगह फुट से नहीं मापी जाती पर दर्शन से मापी जाती है |

कोई विद्यार्थी छोटी उम्र में जिस पाठशाला में पढता है वो ही पाठशाला बड़ी उम्र में देखने जाता है तो छोटी लगती है कारण की बड़ी उम्र में प्रमाण बदल जाता है | घर से पाठशाला जाने वाला रास्ता भी छोटी उम्र में दूर लगता है वोही बड़ी उम्र में छोटा लगता है | कारण की पैर बड़े हुए होते है| बड़ी उम्र में प्रमाण बदल जाते है | गाड़ी के ग्यारेज क का दरवाजा बड़ा चाहिए पर तोते को रखने के लिए छोटा पिंजरा चल जाता है | रेलवे के डब्बे का दरवाजा मनुष्य के माप के अनुसार बनाया होता है, फिर भी कोई मनुष्य बहोत लंबा हो तो उसे झुककर ही आना पड़ता है |

रूप का नाम के साथ संबंध है | भाषा रूप को पकड़कर रखती है | छोटी उम्र का मनुष्य बड़ी उम्र में मिलता है तो ये वो ही है ऐसा भाषा के द्वारा समझ सकते है |

देश अथवा जगह ये बहोत विचित्र तत्व है | उसके ऊपर ज्यादा विचार करने की जरुरत है | ऊपर के दृष्टान्त से ये पता चलता है की फुट से किया हुआ माप ठीक तरह से प्रमाणित नहीं होते है| एक कुर्सी को बड़ी उम्र का मनुष्य देखे तो उसे वो छोटी लगेगी और छोटी उम्र का बालक देखे तो बड़ी लगती है | संबंध ऊपर माप निकलता है, इसलिए युकलिड की भूमिति सभी जगह पर सत्य नहीं होती है |

संबंध भी बहोत विचित्र तत्व है | राज्य करनेवाला प्रधान कहते है की प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है की उसने देश का रक्षण करना चाहिए, कारण की जिस देश में जन्म लिया है उसमे जीवन बिताने की अनुकूलता होती है | उसमे भी भावना से बदलाव हो जाता है | पाकिस्तान के बड़ी उम्र के बहोत से लोग हिन्द में जन्मे है तो भी वो खुद को पाकिस्तान के वतनी मानते है | उसमे संबंध के ऊपर जगह निश्चित होती है | कोई अमेरिका में जाकर उस देश के वतनी होकर रहते है | मरने के बाद संबंध बदल जाते है, इसलिए उस दशा में खुद का देश कौनसा ये नहीं समझ सकते है |

दो पैर वाली मनुष्य की रूपवान स्त्री भी कुत्ते को अच्छी नहीं लगती है और चार पैर वाली कुत्ती से कोई मनुष्य विवाह नहीं करता है | देखनेवाले की माया के पीछे बहोत प्रकारके संस्कार रहे होते है | वो संस्कार नए नए देश-काल बनाते है | जैसा स्वप्न में घटित होता है वैसा जाग्रत में होता है | इसलिए दर्शन शाश्त्र का अभ्यास करना चाहिए |

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म वस्तु को परमाणु अथवा इलेक्ट्रान कहते है | वो आँख से नहीं देखा जा सकता है | उसे देखने के लिए तेज का उपयोग करना पड़ता है और वो तेज इलेक्ट्रान को ऐसा असर करता है की उसकी गति दिखती है

तो जगह नहीं दिखती और जगह दिखती है तो गति नहीं दिखती है | दोनों भी साथ में नहीं दिखते है | इसलिए प्रमाण के ऊपर प्रमेय का आधार रहता है | संबंध के आधार से संबंधी होते है | उसमे से क्षेत्र धर्म उत्पन्न होता है, उसे Field कहते है | जैसे स्वप्न में घटित होता है वैसे जाग्रत में भी घटित होता है |

मनुष्य खुद के मतलब के अनुसार वो मतलब पूर्ण करने के लिये जगह बनाकर उसमे खेलता है और बाते करके खुद का प्रमाण सत्य है ऐसा सिद्ध करता है | इसलिए नयी नयी सृष्टि दृष्टि के अनुसार रचती जाती है |

काल के बारेमे भी घटना के अनुसार काल बनता है | स्वप्न में 24 घंटे का दिन नहीं | ब्रह्मा का दिन और उनके पुत्र मनु का दिन एक जैसा नहीं | काल ये भी एक प्रकारका संबंध है | वर्त्तमान काल में भूतकाल के स्मरण से भूतकाल होता है और भविष्यकाल के आशा से भविष्यकाल होता है | उसमे ज्ञान वर्तमान काल का उपयोग किया जाता है | काल का आधार दर्शन ऊपर और ज्ञान ऊपर है | देव भी काल के आधीन है | देवलोक में भी स्मरण है और आशा है | काल मनके अंदर है | सुषुप्ति में मन नहीं तो काल भी नहीं, इसलिए मन को ठीक करना जरुरी है |

न्यूज़पेपर पढने की आदत होने के बाद और रेडिओ सुनने की आदत होने के बाद काल का जोर लगता है और भुत और भविष्य के विचार आते है | भूतकाल में रामायण और महाभारत की घटना हुयी थी या नहीं? इस बारेमे इतिहास में कोई तारीख नहीं लिखी है | नए जन्मे हुए बालक को इतिहास या काल का कोई पता नहीं | उसे कोई चीज चाहिये और वो ना मिले तो ही उसके ऊपर काल का असर होता है | बड़ी उम्र में छोटी उम्र की बाते याद आती है तो भूतकाल होता है | भूतकाल चला गया होता है पर वर्तमान काल में याद आता है तो वर्तमान काल ठीक तरह से समझना चाहिए| उस वक्त नया वर्तमान काल रहता है, उसमे भूतकाल की भ्रान्ति है | डोरी में भूल से देखा हुआ साप कल भी वो ही जगह पर दिखा तो वो मिथ्या दर्शा है | इसलिए दर्शन ठीक करने की जरुरत है |

स्मृति- ज्ञान का पृथःकरण करने के बाद ये पता चलेगा की मात्र भूतकाल को ही याद नहीं करते पर वर्तमानकाल को ही नया बनाते है | इसलिए भूतकाल की बाते करने से कोई फ़ायदा नहीं पर वर्तमानकाल को ठीक तरह से समझना जरुरी है | वर्तमानकाल में भविष्यकाल की आशाए भी रही हुयी है | लश्कर के मनुष्य लढाई में इसलिए मरते है की भविष्य की प्रजा सुखी हो | हिन्द को सुखी करने के लिए म. गांधीजी ने खुद का भोग दिया; फिर भी प्रजा सुखी नहीं हुयी | अभी के मनुष्य भी भविष्य की प्रजा को सुखी करने का प्रयत्न करते है और इस तरह से भविष्य बनाते है, पर वर्तमान दशा ठीक करे तो भविष्य का अंत आ जाता है | इसलिए गीता में कहा हुआ है उस अनुसार कर्म में अकर्म- बुद्धि होना चाहिए | उसके लिए देह के धर्म आत्मा में नहीं लेना चाहिए |

मनुष्य को भूतकाल में जो सुख ठीक लगा उतना ही याद करता है | वर्तमानकाल का अर्थ शाश्त्र मनको चंचल करता है | कर, कायदा और महंगाई आदि मनुष्य के मन पर असर करता है | वैसा मन काल को नहीं जित सकता है | मनुष्य के लिखे हुए न्यूज़पेपर पढने से मनुष्य के जीवन से आगे बढ़ नहीं सकते है |

पेड़ में बिज सत्ता है | सुखा पान गिर जाता है और नया पान आता है तो ये बिज सत्ता वैसी की वैसी ही रहती है | उसमे बदलाव नहीं होता है | पिता की एक ऊँगली कट जाय तो वो वो पिता ही रहता है | पुरुष- सूक्त के अनुसार सभी वर्ण और आश्रम एक पुरुष के अंदर है | स्वप्न में जो चाहे बनता हो वो उसमे एक ज्ञान का ही खेल मात्र है | समष्टिभाव के बिना अथवा सर्वात्मभाव के बिना देश और काल जित नहीं सकते है | उसके लिए धर्म के ज्ञान की जरुरत है | उसमे दर्शन की महिमा है | जिस दर्शन से स्वतंत्र तत्व कम कर सकते है वो दर्शन ऊँचा है, उसमे लाघव गुण है |

पाठशालाए बढ़ाने से सच्चा ज्ञान नहीं मिलेगा | जब तक भोग के संस्कार बढ़ते रहेंगे तब तक काल नहीं जित सकते है | भोग से रोग बढ़ेंगे और रोग मिटाने के लिए दवाई की कंपनिया खोलने पड़ते है | भोग कम हो तो ज्ञान ठीक करने का वक्त मिलता है और ज्ञान ठीक होता है तो भोग कम होते है | इसके लिए नयी प्रकारके शिक्षको की जरुरत है और दृष्टि- सृष्टिवाद की जरुरत है| विवेक, वैराग्य और षट संपत्ति का ज्ञान बिना भोग कम नहीं होंगे |

प्रकरण : 13

गर्भित संस्कार

सामान्य नियम ऐसा है की संस्कार के अनुसार ज्ञान होता है और ज्ञान के अनुसार संस्कार होते है | और संस्कार में कोई तो राग- द्वेष, अनुकूलता, वासना आदि रहे होते है और वो वर्तमान ज्ञान में अनुभव होते है | प्रत्येक मनुष्य के अंदर वासना होती ही है ऐसा मानकर उसे विवाहित किया जाता है | वो काम समाज के व्यवस्था के लिए जरुरी है | यदि उसे विवाहित नहीं किया जाय तो वो मनुष्य बहोत से कुटुंब को बिघाड सकता है | फिर भी श्री रामकृष्ण विवाह के बाद भी उनमे भोग की वासना नहीं थी और विवाह के बाद कितने ही मनुष्य वैवाहिक जीवन से तंग हो जाते है | इसलिए ज्ञान और संस्कार एक जैसे नहीं रहते है | इसलिए संस्कार के दो भाग निचे बताये नुसार किये जा सकते है :-

1) सामाजिक संस्कार जो सृष्टि- दृष्टिवाद वालो को उपयोगी है |

2) व्यक्ति के संस्कार जो दृष्टि- सृष्टिवाद वालो के लिए उपयोगी है |

सामाजिक मनुष्य के लिए प्रमाण फुट और घडी है | व्यक्ति का प्रमाण उसका दर्शन है और इसलिए उसका तेज ये प्रमाण है | अभी के सापेक्षवाद के सायन्स में फुट और घडी रद्द हुए है, इसलिए परिणाम वाद झूठा साबित हो रहा है | जब भी ज्ञान और संस्कार बदल जाते है तभी नयी शुरुवात होती है, स्वप्न में से जागने के बाद उसकी खत्री हो जाती है | जहा तुरंत ही नयी शुरुवात होती है वहा परिणामवाद नहीं चल सकता है |

और मनुष्य का स्वभाव जाने बगैर जगत का स्वभाव नहीं जान सकते है | जगत को चीजो के स्वभाव से जान सकते है पर मनुष्य को ज्ञान के रीती से ही जान सकते है | मनुष्य की मान्यता बदलती जाती है इसलिए उसे इतिहास की तरह से नहीं समझ सकते है | आज सवेरे मनुष्य उठने के बाद उसके मन में कल के संस्कार तुरंत ही आ जाते है ऐसा कितने ही मानते है पर ये बात सत्य नहीं है | जैसे कल की नदी आज नहीं आ सकती है वैसे ही कल के संस्कार आज नहीं आते है | कल के सभी संस्कार आज आते हो तो सभी पाठशालाए बंद कर देना चाहिए, पर प्रतिदिन प्रत्येक शिक्षक जाँच करता है की उनके विद्यार्थीयो के ज्ञान में कुछ बदलाव हुआ है या नहीं | पाठशाला में प्रत्येक वर्ग में नए पुस्तक होते है और उनके द्वारा नयी विचार शक्ति प्राप्त होती है | इसलिए कल के संस्कार ऐसे के ऐसे नहीं रहते है | रात को मनुष्य नए विचारोसे सोता हो तो सुबह पहले क्या विचार करेगा वो निश्चित नहीं कह सकते है | कल उसमे कुटुंब की सुख की भावना हो तो दुसरे दिन देश के लिए भावना जाग्रत हो सकती है | नेताजी सुभाषचंद्र बोस दुसरे विश्व युद्ध के वक्त गुप्त वेश धारण करके हिन्द में से भागकर उरोप गए थे | वहा उनकी ऑस्ट्रियन पत्नी के साथ थोडा वक्त बिताया, बाद में देश के लिए भावना जागी और फिर बाद में उन्होंने पूर्व में आकर हिन्द के मुक्ति के लिए आझाद फ़ौज तैयार की | श्री अरविंद बंगाल की स्वदेशी आंदोलन से भागकर पांडेचेरी गए और वहा योग साधना शुरू की | म. गाँधीजी अच्छे वकील होने के लिए बारिष्टर हुए पर वकीलात करने के बदले सत्याग्रह में चले गए | इसलिए कल का जगत आज नहीं आता है और कल के संस्कार आज नहीं आते है, प्रत्येक वक्त नया जीवन और नयी शुरुवात होती है, इसलिए परिणामवाद सत्य नहीं |

जहा उद्योग बढ़ाने की बाते चलती हो अथवा कामशाश्त्र की बाते चलती हो वहा भूतकाल का स्मरण और परिणामवाद अनुभव होता है | ऐसे मनुष्य विवर्तवाद नहीं समझ सकते है | सागर में रही हुयी मछली पृथ्वी ऊपर के मनुष्य का जीवन नहीं समझ सकती है | जीवन में विद्या, कला, भाषा, धर्म आदि से मनुष्य नया बनता जाता है और जगत के विषय में उसकी मान्यताए बदलती जाती है | इसलिए प्रतिदिन उसका नया जन्म होता है | नए जन्मवाले को अपने शाश्त्र में द्विज कहते है | समाज के कायदे मनुष्य को समाज के जैसा रखना चाहते है, तो भी बहोत मनुष्य समाज के नियम नहीं पालते है | राज्य के कायदे मनुष्य को राज्य के लायक बनाना चाहते है, फिर भी बहोत से राज्य बिखर गए और मनुष्य नयी रचना मांगते रहते है | इसलिए डार्विन का उत्क्रांतिवाद और परिणामवाद सत्य नहीं | चेतन वैसा का वैसा ही रहता है पर देखनेवाले की दृष्टि- भेद से उसमे विषय सत्ता अनुभव होती है | उसे विवर्तवाद कहते है | भक्तिमार्ग वाले उसे विरुद्ध धर्माश्रयत्व कहते है, और वो ब्रह्म में है ऐसा मानते है | मनुष्य के जीवन में चार पुरुषार्थ होने से, कौनसे वक्त कौनसा समाज अथवा कौनसा देश अथवा कौनसा मनुष्य क्या करेगा वो नहीं कह सकते है | रज्जू में साप दिखता है अथवा दंड धारा या माला दिखता है वो रज्जू का परिणाम नहीं, पर रज्जू का विवर्त है | जिसमे डर हो उसे साप दिखता है और भक्तिवाले को वहा माला दिखता है |

वेदांत में किसी जगह कहा हुआ है की पूर्व पूर्व संस्कार ये उत्तर उत्तर संस्कार का कारण है पर ये बात सत्य नहीं |

पहले संस्कार कहासे आए !! और पहला काल कहासे आया !! इस बात का पता नहीं होता है इसलिए उसे अनादी कहा जाता है | विवर्तवाद में नयी शुरुवात होती है और संस्कार का काल मिल सकता है | रज्जू में माला दिखती है ती वो विवर्त है और समकाल प्रतीतिरूप है | विवर्त को कार्य- कारण भाव में नहीं डाल सकते है |

इसी कारण को लेकर शाश्त्र में चार प्रकारके प्रलय बताये है | उसे नित्य, नैमितिक, प्राकृत और आत्यंतिक प्रलय कहते है | उत्पत्ति भी तिन प्रकारकी कहलाती है | उसे पाद्म कल्प, ब्राह्म कल्प और वाराह कल्प कहते है | उत्तर संस्कार की अपेक्षा से पूर्व संस्कार कहता है और उत्तर संस्कार पूर्व के जैसा होता है तो ही भूतकाल का विचार आता है, पर उत्तर संस्कार पूर्व जैसे नहीं रहते है | इसलिए प्रत्येक दिन का जाग्रत ये नया नया स्वप्न है | इसलिए जगत में सबसे पहले क्या था ये प्रश्न ही झूठा हैं | जवानी का काल ये बाल्य अवस्था का काल नहीं | जन्म के वक्त खुद के जन्म का कोई पता नहीं था | गर्भमें से भी बच्चा आयेगा या बच्ची आयेगी इस बात का पता नहीं होता | गर्भित संस्कार की भी ऐसी दशा है |

कोई घेटा मनुष्य के पाससे पसार हो तो मनुष्य को कैसा लगेगा? और वहा से सिंह पसार हो तो सिंह को कैसा लगेगा? सिंह उसे सुंघेगा और खुद का भोजन समझकर उसे खा जायेगा | स्टेशन पर घंटी बजती है तो ट्रेन का छुटने का वक्त होता है और मंदिर में घंटी बजती है तो दर्शन का वक्त होता है | कुत्ते को घंटी का अर्थ नहीं समझता है पर यदि खाते वक्त घंटी बजाकर खाने दे तो घंटी का अर्थ भोजन की तैयारी होता है |

मनुष्य को पाठशालाओ में ज्ञान देने के लिए बहोत ध्यान रखने की जरुरत है उसे कुत्ते की तरह भोजन के लिए तैयार करना नहीं पर द्विज बनाना है | उसका नया जन्म कराना है | उस के लिए वर्णाश्रम की पद्धति बहोत ही अच्छी है | पर वो अभी के समाजवादी समाज को अनुकूल नहीं आती है | वर्णाश्रम की पद्धति नए संस्कार देकर मनुष्य को ब्रह्मभाव में ला देती है | समाजवादी मात्र मनुष्य को रोटी, कपडा, मकान और दवाखाना आदि दे सकता है | इसलिए मनुष्य नया बनता नहीं पर मनुष्य के जैसे जन्म लेता है और मर जाता है | अच्छे संस्कार के लिए प्रत्येक घटना को अनेक तरह से देखने की शक्ति मनुष्य में आना चाहिए पर अभी के पाठशालाओ में पश्चिम के तरह से मात्र अभ्युदय का ही विचार विद्यार्थियो को दिया जाता है | उन्हें निःश्रेयस का पता नहीं | ऐसा कोई दोष नहीं की जो भेद से उत्पन्न नहीं हो; ऐसा कोई गुण नहीं की जो अभेद से उत्पन्न ना हो |

प्रकरण : 14

भाषा

मनुष्य जन्म लेता है तब उसका नाम रखा जाता है | नाम बिना के मनुष्य के साथ व्यवहार नहीं हो सकता है | बाद में उस मनुष्य को जैसे शरीर के ऊपर प्रेम होता है वैसा ही प्रेम खुद के नाम पर भी होता है | कितने ही पशुओ के नाम भी रखे जाते है और बाद में पशु वो नाम खुद का है ऐसा समझ जाता है देवो का भी नाम रखा जाता है और बाद में देवो की स्तुति होती है तो वो समझ जाते है की उनकी स्तुति हो रही है | शब्द में अचिन्त्य शक्ति है इसलिए शब्द- शक्ति को शारदा कहा जाता है | यज्ञ के वक्त मंत्रो द्वारा देवो का आवाहन किया जाता है |

वेदों में कहा हुआ है की अग्नि ने वाणी का रूप लेकर मुख में प्रवेश किया है | इसलिए वाणी ये अग्नि- देवका रूप है | रेडिओ में से कुछ सुनना हो तो उसे पहले गरम करना पड़ता है | टेप रिकॉर्डिंग मशीन को पहले गरम करने के बाद उसमे शब्द दखल हो सकते है | देव भी प्रकाश रूप होने से जैसे मंत्र होता है उस अनुसार जवाब देते है | स्वप्न में वाणी बहोत काम करती है | वो भी तेजस- जिव में से निकलती है | वाणी रूप को पकड़कर रखती है | इसलिए स्वप्न के वक्त स्वप्न मिथ्या नहीं लगता है |

वाणी कोई शब्द अर्थ बिना का नहीं हो सकता है | वाणी के साथ अर्थ की भावना रहती है | किसी मनुष्य को गुस्से में कुछ कहा जाता है तो वो भाषा के द्वारा अर्थ पकड़कर रखता है और किसी वक्त बोलनेवाले को माफ़ी भी

मांगनी पड़ती है |

वाणी ये एक माया है और दृष्टि- सृष्टिवाद का विषय है | वो कैसी माया है ये निचे बताये दृष्टान्त से समझ सकते है | किसी एक पेड़ पर एक पक्षी कोई आवाज कर रहा था | उसके छे अर्थ निचे बताये नुसार हुए :-

1) वहा से एक फ़क़ीर निकला, उन्होंने कहा की ये पक्षी ऐसा बोल रहा है की " करीम तेरी कुदरत |"

2) इतने में कोई पहलवान वहा से निकला | उसने कहा ये पक्षी ऐसा बोल रहा है की " दंड कुस्ती कसरत |"

3) वहा से एक रामानंदी साधू निकला | वो कह रहा था की ये पक्षी कह रहा है की " राम लक्ष्मण दशरथ |"

4) इतने में एक वृद्ध माता वहा से निकली | उसे चरखा चलाने की आदत थी, इसलिए उसने कहाँ की वो पक्षी कह रहा है की " अट पुनि चमरख |"

5) वहा से एक दुकानदार निकला | वो मसाला बेचने के लिए दुसरे गाँव जा रहा था | उसने कहा की ये पक्षी तो कह रहा है की " हल्दी मिर्ची अदरक |"

6) इतने में एक कपास पिंजने वाला आया | उसने कहा की तुम्हारी सब बाते झूठी है | ये पक्षी तो कह रहा है की " टे टे टचक |"

इस ऊपर से ये समझ अएगा की मनुष्य के ज्ञान के पीछे उसके जीवन का अर्थ पड़ा होता है और वो वाणी द्वारा प्रगट होता है | इस रीती से विवर्त समझ में आयेगा | विवर्त में नयी शुरुवात होती है |

उपनिषद् में कहा हुआ है की जिव मरता है तब पहले वाणी मन में लय हो जाती है, मन प्राण में लय हो जाती है और प्राण पर देवता में लय हो जाता है, इसलिए उलटी बाजु से देखा जाय तो जब जन्म होता है तब देवरूप अग्नि में से प्राण, प्राण में से मन और मन में से वाणी निकलती है | कोई बालक जन्म के बाद नहीं रोता है तो डॉक्टर उसे जबरदस्ती रुलाता है | जब भी कोई भी शब्द निकलता है तभी उसका जन्म हुआ है ऐसा मानते है | उसके बाद वो मनुष्य की भाषा सिखता है, फिर भी उसका अर्थ करने के लिए उसके मतलब के साथ रहता है हिन्द में बहोत सी भाषा होने के कारण बहोत से प्रांत करने पड़े | एक भाषा वाले मनुष्य भी शब्द के अनेक अर्थ कर लेते है | भाषा के पीछे कोई ना कोई संस्कार पड़े होते है | संस्कार के पीछे प्रमाण, मान अथवा माया रही होती है | इसलिए कल का प्रमाण लेकर आज मनुष्य बाते करते होते है |

आत्मज्ञान के लिए वेदांत में चार महावाक्य का उपयोग होता है | उसमे भी वाच्यार्थ और लक्षार्थ भेद करके गुरु शिष्य को समझाते है | किसी वक्त आवृत्ति भी करनी पड़ती है | नयी भाषा से नया जीवन बनता है | ज्ञान होने के बाद भाषा की बहोत जरूरत नहीं पड़ती है, इसलिए बहोत से महात्मा पुरुष मौन रखते है |

विचारो में बदलाव हो जाता है तो आचार में भी बदलाव हो जाता है | कोई चित्रकार नया नया रूप चित्रित करता है, संगीत गानेवाले नयी नयी रीती से गाते है | जैसे स्वप्न वोही का वोही दूसरी बार नहीं आता है वैसे ही जाग्रत में भी मनुष्य नए नए शब्दों के नए नए अर्थ निकालकर नया जाग्रत बनाते है | परा वाणी विचार करती है, पश्यंती देखती है, मध्यमा शब्दों को रूप के साथ जोड़ देती है और वैखरी उस रूप का नाम रखती है | इसलिए जहा जैसी माया होती है वहा वैसा अर्थ दिखाई देता है |

A variety of media will correspond to various structures of the object, to various meaning for objective relation.

जाग्रत का जगत स्वप्न के जैसा जिव का बना हुआ है | एक मनुष्य एक शब्द एक अर्थ में उपयोग करता है | दूसरा मनुष्य वो ही शब्द दुसरे अर्थ में उपायोंग करता है | वोही का वोही मनुष्य भी दुसरे घटना में दूसरा अर्थ करता है | शब्द का और अर्थ का बहोत बहोत संबंध है | वो मिलकर नयी अवस्था रचते है | नए शब्द से और अर्थ से लढाई हो सकती है और लढाई रोक भी सकते है |

जब भी उपनिषद का महावाक्य कहता है की " वो तू है " तब उस वाक्य का अर्थ जाने से पहले पद- पदार्थ के अर्थ का ज्ञान होना चाहिए, भाषा, कला, सायन्स, धर्म आदि मनुष्य में नयी नयी दशा उत्पन्न करती है | भाषा से मनुष्य की निति, कुल और संस्कार का पता चलता है | मनुष्य को जैसे जैसे संबंध अच्छे लगते है वैसी वैसी भाषा उत्पन्न होती है | उससे दृष्टि- सृष्टिवाद सिद्ध होता है |

प्रत्येक मनुष्य जैसे खुद का स्वप्न रचता है वैसे ही खुद का जाग्रत रचता है और उस जगत को भाषा पकड़कर रखती है | मनुष्य की प्रशंसा भाषा के द्वारा होती है और भगवान की प्रशंसा भी भाषा के द्वारा ही होती है, फिर भी दोनों में अंतर है | मनुष्य की भाषा में भी बहोत बदलाव हो जाता है | कच्छ की भाषा में नान्यतर जाती नहीं | कठियावाड में " इ " का उपयोग ज्यादा किया जाता है | गुजरात में किसी जगह पर खेतर (खेत) को छेतर कहते है | छोटा उदेपुर में भील लोग साप को घसेडिया कहते है क्योकि वो जमींन को घिसते हुए चलता है | सूरज को दुबमणो कहते है कारण की सूरज शामको अस्त हो जाता है | इसलिए शब्द से अर्थ के तरफ ज्यदा ध्यान रखना चाहिए और अर्थ दर्शन में से निकलता है | भाषा अग्निरूप होने से संपूर्ण अवस्था को व्याप जाती है और वो प्रमाण बन जाती है इसलिए जब भी एक मनुष्य दुसरे मनुष्य की टिका करता है तब दूसरा मनुष्य वो सहन नहीं करता है | टिका उसके आत्मा के तेज को असर करती है | मनुष्य ज्ञानी होता है तब उसको पुरानी भाषा अनुकूल नहीं आती है, फिर भी मनुष्य के साथ व्यवहार के लिए मनुष्य की सामान्य भाषा उपयोग करनी पड़ती है | सच देख जाय तो ज्ञान के लिए दूसरी भाषा होती है और अज्ञानी को वो समझने की आदत कर लेना चाहिए | माया भाषा को असर करती है, इसलिए नयी भाषा अथवा सात्विक माया तैयार करना चाहिए |

प्रकरण : 15

विदेह- मुक्ति और जीवन्मुक्ति

वेदांत शाश्त्र में ज्ञान की सात भूमिकाए निचे बताये नुसार दि हुयी है :- 1. सुभेच्छा 2. विचारणा 3. तनुमानसा 4. सत्वापत्ति 5. असंसक्ति 6. पदार्थाभाविनी 7. तुरीया | इसमें चौथी भूमिका में ज्ञान होता है | उसके बाद की तिन भूमिकाओ जीवनमुक्ति के विलक्षण आनंद के लिए मानने में आयी है | उसमे मुख्य कर्तव्य ये है की धीरे धीरे उपराम वृत्ति अपनाकर मनोनाश और वासना का क्षय करना है | चौथी भूमिका से माया की आवरण शक्ति दूर होती है, फिर भी विक्षेप शक्ति रहती है| पांचवी भूमिका से विक्षेप शक्ति कम करके जीवन मुक्ति का सुख लेना है | उस वक्त ज्ञानी के व्यवहार के लिए लेशाविद्या रहती है | वो अविद्या अंत में जाती रहती है और शरीर जाता है तब विदेह-मुक्ति प्राप्त होती है |

चौथी भूमिका में ' तत्वमसि ' महावाक्य का बोध होता है और अनुभव होता है | उसके बाद जो लेशाविद्या रहती है और वो लेशाविद्या शरीर जाता है तब जाता है तो मुख्य मुक्ति अंत में होती है और चौथी भूमिका में जो मुक्ति हुयी वो गौण मुक्ति कहलाती है | ये बात सत्य हो तो ' तत्वमसि' महावाक्य के बदले ' तत्वम भविष्यसि ' याने की ' वो तू होगा ' ऐसा वाक्य कहना पड़ेगा | लेशाविद्या का सिद्धांत महावाक्य के विरुद्ध जा रहा है, इसलिए जीवनमुक्ति का और विदेह-मुक्ति का विचार नयी रीती से करना चाहिए |

जीवनमुक्ति का विचार सामान्य रीती से ज्ञान होने के बाद प्रारब्ध कर्म भोगने के लिए है | इस पुस्तक के सातवे प्रकरण में प्रारब्ध कर्म का विचार नयी रीती से किया गया है | ज्ञान होने के बाद भूतकाल अथवा भविष्यकाल नहीं रहता है, इसलिए प्रारब्ध कर्म भी नहीं रहता है | गीता में कहा हुआ है की ज्ञान रूपी अग्नि सभी कर्मो को जला देती है, तो फिर ज्ञानी का व्यवहार किस तरह से चलता है वो समझाना चाहिए | वो सृष्टि- दृष्टिवाद का विषय है | दृष्टि- सृष्टिवाद के रीती से ऐसा समझाया जा सकता है की वो व्यवहार किसकी दिखता है? ज्ञानी के लिए ये व्यवहार ब्रह्म रूप है | दुसरे को ज्ञानी का व्यवहार सामान्य दृष्टि से दिखता है अथवा प्रारब्ध रूप से दिखता है तो वो प्रमाण रूप नहीं | ज्ञानी के दृष्टि में शरीर बैठता है ओ स्वयं नहीं मानता है की मै बैठा हु और शरीर उठता है तो नहीं मानता है की मै उठा हु | भागवत में कपिल आख्यान और हंसगीत में इस बात का प्रमाण है |

एकबार ऋषिकेश में स्वामी मंगलनाथजी जंगल में बैठे थे | वहा से स्वामी सेवारामजी पसार हुए | उन्होंने मंगलनाथजी को पूछा की ' नाथजी, क्यों यहाँ बैठे हो?' मंगलनाथजी ने कहा ' तुम्हारी दृष्टि में ' इसका अर्थ ये है की शरीर यहाँ बैठा है; मै यहाँ बैठा हु ये समझना नहीं |

दृष्टि- सृष्टिवाद में शुरुवात से ही संपूर्ण अवस्था का विचार है | उसमे फुट और घडी का माप नहीं, इसलिए भेद का निषेध है | ज्ञान होने के बाद शरीर के प्रारब्ध का विचार नहीं होता है और यदि होता है तो द्वैत होगा | दृष्टि-

सृष्टिवाद में अन्वय है, व्यतिरेक नहीं; इसलिए किसी प्रकारका भेद नहीं बनता है, इसलिए जीवनमुक्ति और विदेह- मुक्ति का भेद नहीं बन सकता है | यदि ब्रह्मज्ञान से इतना बड़ा जगत ब्रह्मरूप हो जाता है तो जरा जितना शरीर ब्रह्मरूप क्यों नहीं हो सकता है?

जो कृतोपास्ती ज्ञानी हो वो ज्ञान होने के बाद का जीवन अन्वयभाव से लीला रूप से देख सकता है | और इसलिए उसके दृष्टि में प्रवृत्ति- निवृत्ति का भेद नहीं रहता है | ऐसी दशा श्रीआनंदमयी मा के जीवन में देखने में आती है | उनके 20 आश्रम है, लगभग दस हजार शिष्य होंगे; वो अलग अलग शहरों में और गाँव में घूमते है, फिर भी जीवनमुक्ति का आनंद ले सकते है | उनको भुत या भविष्य का विचार नहीं | वो कृतोपास्ती ज्ञानी है | उनको ग्रहण या त्याग के विचार नहीं आते है | उनको ऐसा लगता है की ऐसी कोई जगह नहीं की जहा मै नहीं और ऐसा कोई काल नहीं की जहा मै नहीं | उनके लिए गत जन्म का अथवा आनेवाले जन्म का कोई विचार ही नहीं | उनको मनुष्य के जीवन के काल की गति लागु नहीं होती है | जिनको भूतकाल याद आता है उनके लिए भविष्यकाल रहता है |

प्रारब्ध हो तो भी वो अदृष्ट है और अज्ञात सत्ता का विषय है | ज्ञान पूर्वक जीवन ये दृष्ट फल देता है, और वो ज्ञात- सत्ता का विषय है | ज्ञानी सभी कर्मो को जित एकता है | जहा कर्मो का कर्ता बदल जाता है वहा प्रारब्ध का आश्रय कोई नहीं रहता है | अहंता- ममता रूप जिव भाव छुट जाने का बाद अखंडब्रह्म ही मेरा स्वरुप है ऐसा दृढ़ निश्चय रखना चाहिए | ऐसा नहीं होता है तो जीवनमुक्ति और विदेह- मुक्ति का भेद रह जायेगा |

दृष्टि- सृष्टिवाद में ज्ञान के काल में जीवन मुक्ति है | खुद सदैव मुक्त ही है ऐसा ज्ञान होता है | बाद में उसके लिए विक्षेप शक्ति नहीं रहती है | जीवन मुक्ति के पाच फल निचे बताये नुसार है वो उसमे सदैव जाग्रत रहते है :-

1. ज्ञान रक्षा 2. तप 3. विसंवाद का अभाव
4. दुःख का अभाव 5. दिव्यसुख का अनुभव

दृष्टि- सृष्टिवाद में ज्ञान होने के बाद अन्वयभाव है, इसलिए कोई विरोध नहीं रहता है | बाहर और अंदर जो जो दृश्य दिखता है उसकी उत्पत्ति अलग अलग काल में नहीं होती है | दर्शन के काल में सृष्टि है | स्वप्न के मनुष्योंकी जन्म तारीख अलग अलग नहीं होती है, वहा तेज की नयी घडी बन जाती है | जाग्रत में भी ऐसा ही है, एक सेकंद में युग का विचार समां जाता है |

बुद्धि बहार के जगत का विचार करती है | इसलिए उसे व्यतिरेक भाव की जरुर पड़ती है | प्रेम के क्षेत्र में सभी वस्तुए अंदर होती है | वो प्रेम के बाहर नहीं जाती है | प्रेमभाव वाले को भक्ति मार्ग और अन्वय भाव अच्छा लगता है | उसकी दृष्टि में वासना क्षय के साथ भक्ति और प्रेम का नया पुरुषार्थ खुला होता है | उसमे ज्ञान होने के बाद की प्रवृत्ति भगवान के काम में उपयोगी होती है| प्रतिदिन नयी शुरुवात और नया सौंदर्य भासित होता है | नया जन्म अथवा द्विजत्व अनुभव में आता है | अखंडभाव से अखंड दर्शन मिलता है | उसमे कोई कोई ही भाग्यशाली होता है इसलिए वो दर्शन भगवान की कृपा का फल मानने में आता है |

ज्ञानीभक्त जगत को मिथ्या नहीं मानता है पर उसमे अनेक अर्थ रहे हुए है ऐसा देखता है | फिर भी उसमे संपद- रूप उपासना नहीं | संपद- उपासना पुरुष- तंत्र है | ज्ञान वस्तु तंत्र है |

नए दर्शन में अनेक प्रकारकी शक्यता है | वहा मनुष्य के जीवन के जैसी नियति नहीं | शक्यता का क्षेत्र नियति के बाहर है | सामान्य रेखाओ में भूमितिवालो को सामान्य आकार दिखता है, दुसरे को उसमे दागिना दिखता है, तीसरे को उसमे माला दिखती है | भक्त को उसमे भगवान की चमत्कृति दिखती है | प्रत्येक घटना में अनेक प्रकारकी शक्यता है | एक ही घटना को अनेक प्रकार से देखना आ जाय तो उस बात का पता चलता है | ये जगत एक आश्चर्य है ऐसा गीता में और कठोपनिषद में कहा हुआ है | उसे प्रारब्ध में अथवा नियति में नहीं लाना चाहिए | स्वप्न की नियति (determinism) जाग्रत होते ही टूट जाता है और जाग्रत की नियति, स्वप्न, सुषुप्ति और मद- मूर्च्छा में टूट जाता है |

प्रकरण : 16

दसवा तू है

पञ्चदशी नामके वेदांत का प्रकरण- ग्रन्थ स्वामी विद्यारन्य का रचा हुआ है | उसमे पंधरा प्रकरण है | उसमे तृप्तिदीप का प्रकरण बहोत ही अच्छा है | उसमे कूटस्थ और चिदाभास का खुलासा निचे बताये नुसार किया हुआ है :-

जिव अधिष्ठान के साथ ही मोक्ष का अधिकारी है; केवल चिदाभास मात्र मोक्ष का अधिकारी नहीं होता है | कारण की अधिष्ठान अथवा आश्रय बिना भ्रान्ति की सिद्धि नहीं होती है | रज्जू साप में रज्जू रूपी अधिष्ठान की जरूरत पड़ती है, वैसे ही जिव भावरूप भ्रान्ति को अधिष्ठान की अपेक्षा है और वो अधिष्ठान कूटस्थ है | जिव जब भी अधिष्ठान के अंश मात्र संयुक्त जो भ्रमांश उसका आश्रय करता है तभी " मै संसारी हु " ऐसा मानता है; अर्थात कूटस्थ सहित चिदाभास से युक्त जीवको स्व स्वरुप से स्वीकार करता है तभी " मै संसारी हु " ऐसा अभिमान करता है, पर भ्रमांश की जो (दो देह सहित) चिदाभास है उसका तिरस्कार करके अधिष्ठान भुत जो कूटस्थ उसकी प्रधानता (स्व स्वरुपता) जिव स्वीकार करता है तब " मै चिदात्मा असंग हु " ऐसा जिव जनता है और अनुभव करता है |

" मै कूटस्थ हु " ऐसी वृत्ति भी मिथ्या है, फिर भी उससे संसार की वृत्ति की निवृत्ति होती है| भूल का कारण ये है की नौ गिनने की संख्या में खो गया हुआ ज्ञानवाला दसवा पुरुष खुद खुद के सिवा दुसरे नौ पुरुषोको देखता है और विभ्रम को लेकर मै दसवा हु ऐसा नहीं जनता है | वो यथार्थ वादी आप्त पुरुष का वचन श्रवण करके उस समय पहले परोक्ष रीती से ऐसा जनता है की वो दसवा है, और बाद में अपरोक्ष रूप से खुद दसवा है ऐसा जनता है | जब भी असत्वापादक आवरण नाश हो जाता है तभी परोक्ष ज्ञान होता है और अभानापादक आवरण नाश होता है तब अपरोक्ष ज्ञान होता है |

उसी प्रकारसे वेद के अवांतर वाक्य से परोक्ष ज्ञान होता है और महावाक्य से अपरोक्ष ज्ञान होता है | ऐसा महावाक्य बहोत सुनते है, फिर भी अपरोक्ष ज्ञान तुरंत नहीं होता है | श्रावण के बाद फिर मनन और निताध्यासन की जरुरत पड़ती है | उससे असंभावना और विपरीत भावना नष्ट हो जाती है | झूठी भावना होने का कारण माया है और महावाक्य सुनने के बाद भी ज्ञान न हो तो उसका कारण तिन प्रकारका प्रारब्ध है | प्रारब्ध का विचार प्रकरण 7 में हो चूका है |

भूल होने का कारण माया है तो वो माया का स्वरुप समझने की खास जरुरत है | नदी उतरकर देखनेवाले ने नौ लोगो को गिना और सामने से आये हुए आप्तपुरुष ने (साधू) वहा दस देखे | नौ को गिनने वाला भी यदि सामने से आया होता तो वो भी दस को गिनता, और सामने से आया मनुष्य यदि नौ के साथ नदी में उतरा होता तो वो भी नौ को ही गिनता कारण की वो खुद को अलग रखकर नहीं गिन सकता था | दोनों गिनंने वालो की शुरुवात की दशा में बहोत बदलाव है | पहले दस लोगो में परस्पर संबंध था और सामने से आये हुए मनुष्य का किसी के साथ संबंध नहीं था वो कूटस्थ अथवा साक्षी के जैसा था उसके लिए दर्शन देखने के लिए बहोत जगह थी | नौ के साथ रहे हए मनुष्य के लिए कम जगह थी इसलिए दृश्य और दृष्टा के बिच नयी प्रकारकी क्रिया हुयी थी | सामने से आया हुआ मनुष्य की बात सुनने के बाद दस मनुष्य का ज्ञान बदल गया और उनकी भ्रान्ति निकल गयी पर उससे पहले उनका ज्ञान उनके प्रमाण से सच्चा जैसा ही था | उनका परस्पर भ्रान्ति वाला संबंध था | सामने से आनेवाला मनुष्य का संबंध अलग प्रकारका था इसलिए भूल की शुरुवात ठीक तरह से जांचनी चाहिए | उसमे संबंध का विचार अथवा माया का विचार समाया हुआ है| पहले दस का मंडल दसवे को खोज ने की आशा में व्यग्र मनवाला था | व्यग्र मनवाला चिदाभास खुद को कूटस्थ के रीती से नहीं जन सकता है | आशा से और डर से चित्त भविष्य में चला जाता है और प्रारब्ध के वश हो जाता है |

सामने से आनेवाला मनुष्य में कोई आशा नहीं थी और कोई डर भी नहीं था इसलिए उसके लिए प्रारब्ध का विचार नहीं था | पहली दशा के मंडल में सबने नौ गिने और भूल (गलती) नहीं निकली | उसी तरह से जिस समाज में मनुष्य दुसरे का भला करने के लिए निकले हो और खुद को नहीं गिनता तो भूल नहीं निकलती | खुद का दिया दुसरे के घर का अँधेरा दूर करने के लिए उपयोग किया जाय और इससे खुद के घर में अँधेरा हो इस बात का पता नहीं चलता है तो भूल नहीं निकलती है, पर भूल और मोटी होती है | जहा नौ है ऐसा ज्ञान निश्चित हुआ है वहा भूतकाल की कोई बात नहीं | प्रयेक नौ गिननेवालोने उनके मंडल के सभी मित्रो का ज्ञान बदल दिया है इसलिए भ्रान्ति मोटी हो गयी है | मनुष्य के जीवन में भी प्रत्येक मनुष्य के प्रमाण से जगत को देखते है तो नयी शुरुवात होती है और भ्रान्ति मोटी होती है वो भ्रान्ति मनुष्य के बिच में रहने से नहीं निकलती है | ऐसी माया जो अलिप्त रही हो वो ही वो माया दूर कर सकता है | नयी माया ऐसी चाहिए की जो उस माया तोड़ सके | दस मनुष्य किस तरह से झूठी माया में फस गए इस बात का पूरा विवरण जानना

मुश्किल है | उनको इसी तरह से संसार को देखने की आदत पड़ गयी होती है | नदी उतरने से पहले भी वो दस लोग खुद के जीवन में खुद को जाने बिना जीवन बिताते थे | ये आदत नदी में उतरने के बाद भी रह गयी थी | सर्कस का सिंह बकरे के बिच में रहने की आदत से बकरे जैसा हो जाता है |

सामने से जो मनुष्य आया उसमे मंडल के संस्कार नहीं थे | उसका मन मंडल के संस्कार से दूषित नहीं हुआ था, इसलिए उसे पहली दशा की गिनने की रीत बदल दि पहले दशा की गिनती में जो परस्पर संबंध था वैसा संबंध सामने से आया हुआ मनुष्य के मन नहीं था | उसने कोई निश्चित निर्णय नहीं किया था | वो दस लोग एक डूब गया ऐसा निर्णय करके बैठ गए थे | उनके लिए दसवा हाजिर नहीं था, फिर भी दूसरी दृष्टी से देखे तो उनको दसवे के साथ संबंध था |

जो दृश्य सबको दिख रहा था उसे ही ठीक करके देखने का प्रसंग था, याने की दृश्य से विक्षेप पाने के बिना अथवा दृश्य को विक्षेप किये बिना दर्शन ठीक करने का प्रसंग था | जो दृष्टा के दर्शन से दृश्य बदल जाय तो दृश्य ठीक तरह से नही जान सकते है | दस मनुष्य परस्पर के संबंध वाली जगह पर बैठे थे और भूतकाल के विचार का अध्यास भी प्रमाण रूप हो गया था | गीता के पंधरवे अध्याय में कहा है की जिव वास्तव में सनातन ब्रह्मरूप है पर जिव लोक में जिव जैसा हो जाता है | दस को देखनेवाले मनुष्य साक्षी के जैसे उस दृश्य को देखते थे इसलिए वो भूल में नहीं पड़े| यदि वो भी उनके जैसे पहले से संबंध वाला होता तो भूल हो जाती पाठशाला के विद्यार्थी शिक्षक के गैरहाजिरी में कैसा घोंघाट करते है यदि वो शिक्षक दिख जाय तो सभी विद्यार्थी उस वक्त चुप चाप बैठ जाते है | शिक्षक का उस प्रकारका संबंध है | संबंध ये माया है | उसमे सत्ता नहीं पर दृष्टा उसे सत्ता देता है तो वो वज्र के जैसा हो जाता है इसलिए व्यवहार सात्विक चाहिए |

प्रकरण : 17

अविद्याका आश्रय

वेदांत के सिद्धांत में सामान्य रीती से ऐसा माना जाता है की दृश्य प्रपंच अविद्या का कार्य है और इसलिए मिथ्या है और कल्पित है | यदि अविद्यासे जगत उत्पन्न हुआ हो तो अविद्याका धनि या माय बाप कौन? अथवा अविद्याका कल्पक कौन? अविद्या एक भाव पदार्थ माना जाता है कारण की अविद्याका विषय भी भाव पदार्थ है, तो फिर अविद्याका आश्रय भी भाव पदार्थ होना चाहिए | ये प्रक्रिया सृष्टि- दृष्टिवाद की है |

दृष्टि- सृष्टिवाद में पहले दृश्य का विचार नहीं पर दृष्टा और दर्शन का विचार है | इस रीती से अविद्या का आश्रय खोजना चाहिए | जिव अविद्या का आश्रय नहीं बन सकता है कारण की ब्रह्म में अविद्या आने के बाद जिव भाव उत्पन्न होता है, इसलिए कितने ही विद्वानों ऐसा मानते है की अविद्याका आश्रय और विषय दोनों भी ब्रह्म ही है | ये बात सत्य हो तो ब्रह्म में अविद्या पहले कब आयी वो कहना चाहिए | वो काम सूरज में अँधेरा खोजने की जैसा है | श्री अरविंद कहते थे की भगवान दारू नहीं पिए है की उन्हें प्रतिदिन अविद्या के स्वप्न आते रहते है |

कितने ही ऐसा मानते है की घर का अँधेरा घर को ढकता है | सूरज बदल उत्पन्न करके खुद को ही ढक देता है | उसी तरह से ब्रह्म में रहा हुआ अँधेरा ब्रह्म मो ढकता है | ये बात सच्ची हो तो घर में रहे हुए मनुष्य के लिए हमेशा अँधेरा ही रहेगा | और ब्रह्म में स्वयंप्रकाशत्व नहीं रहेगा|

प्रश्न पूछनेवाला अविद्यको ग्रहण करके अविद्याका प्रश्न पूछता है | अहंकारी है उसका अहंकार सुषुप्ति में जाता है तब जाग्रत में कहा से आया? जाग्रत में जब अहंकार को ग्रहण किया जाता है तभी इच्छा सहित और जगत सहित अहंकार का ग्रहण होता है | सुषुप्ति में अहंकार नहीं तो इच्छा भी नहीं और जगत भी नहीं | इसलिए प्रश्न पूछनेवाला अविद्या का आश्रय है | इस बारेमे वेदांत सिद्धांत मुक्तावली में, अद्वैत रत्नरक्षण में और गीता के 13 वे अध्याय में दुसरे श्लोक ऊपर श्रीशंकराचार्य के भाष्य में स्पष्ट की गयी है |

सुषुप्ति में अविद्या है ऐसा बहोत से मानते है पर वैसा सुषुप्ति के वक्त नहीं कहा जा सकता है | वो जाग्रत के अज्ञान का कारण सुषुप्ति में मानते है, पर वो दोनो अवस्था के बिच में कारण- कार्य भाव नहीं बनता है | कारण- कार्य भाव

के लिए समसत्ता चाहिए, इसलिए जाग्रत के दृष्टि से सुषुप्ति का विचार करना ये रीत ठीक नहीं; अथवा संबंध करना हो तो सुषुप्ति की दृष्टि से जाग्रत देखना चाहिए | इस रीती से देखते हुए सुषुप्ति में आत्मा निष्प्रपंच है और आत्मा स्वयं का स्वभाव नहीं छोड़ता है | उसकी जाग्रत में और स्वप्न में भी निष्प्रपंचता है |

एक शांतिनाथ नाम के महात्मा ने ऐसा प्रश्न अड़ रहा था की अंतःकरण की वृत्ति ये अविद्या का कार्य है, इसलिए अविद्या उपादान कारण हुआ | और वृत्ति से आवरण भंग होता है ऐसा भी कहा हुआ है, तो वो खुद के उपादान कारण को किस तरह से निवृत्त करे ! मिटटी का घड़ा मिटटी को निवृत्त नहीं कर सकता है | इस प्रश्न का उत्तर उसे मिल नहीं रहा था | ऐसा उसने कहा की कारण- कार्य की रीत ये सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत है | इस रीती से खुलासा नहीं मिलेगा ये रीत छोड़कर दृष्टि- सृष्टिवाद की रीत पकड़ना चाहिए | उसमे विवर्तवाद है, परिणामवाद नहीं |

दृष्टि- सृष्टिवाद की रीत ऐसी है की जाग्रत का अज्ञान परीक्षण करने के बजाए जाग्रत का ज्ञान का परिक्षण करना चाहिए | वो दोनों तरह से जांचा जा सकता है | जाग्रत में चीजे देखकर जो ज्ञान होता है वो चीजो का परिणाम बताता है, पर संपूर्ण जाग्रत अवस्था दर्शन के पहले पड़ी हुयी नहीं होता है | इसलिए उस पद्धति में परिणाम की बात नहीं | दर्शन के अनुसार घडी बदलती है और नयी घडी बनती है | इसलिए जाग्रत में अनेक काल मिलते है | दुःख में वक्त बढ़ जाता है और सुख में वक्त तुरंत ही चला जाता है | उसे ज्ञात सत्ता कहते है | जगत प्रतिभासिक है और प्रतिभासिक अज्ञात सत्ता नहीं रहती है | अविद्या के आश्रय की बात व्यावहारिक सत्ता वाली है | यदि अविद्याका आश्रय प्रश्न पूछनेवाला हो तो उस दशा में मात्र दो सत्ता का विचार रहेगा | एक प्रतिभासिक और दूसरा पारमार्थिक परतिभासिक में अज्ञात सत्ता नहीं बनती है, इसलिए ज्ञान का स्वरुप, ज्ञान का विषय खोजने की जरुरत है |

ज्ञात सत्ता में एक विचित्र स्वभाव ऐसा है की ज्ञानवाला मनुष्य खुद के ज्ञेय को उत्पन्न करता है और उसे विक्षेप करता है, इसलिए जगत जैसा है वैसा नहीं जन सकता है | किसी पाठशाला में शिक्षक की ऐसी इच्छा हो की मै मेरे क्लासरूम में जाकर विद्यार्थियो का स्वभाव जान सकू तो वो काम नहीं हो सकता है कारण की उसके हाजिरी से ही विद्यार्थी शिस्त में बैठ जाते है | किसी शहर के पुलिस सुपरिटेन्डडेंट की इच्छा शहर का ट्राफिक देखने की हो पर उनकी हाजिरी मात्र से सब ट्राफिक के वाहन ठीक तरह से चलाने लगते है, इसलिए उसे ट्राफिक की दशा जानने के लिए साधे कपडे पहनने पड़ते है | इसी तरह से जो जाग्रत का ज्ञान जो ज्ञेय को बदल देता है तो जगत कैसा है वो किस तरह से जान सकते है? क्वांटम थेओरी के अनुसार परमाणु (elecron) को जानने के लिए उसे दुसरे तेज से प्रकाशित करना पड़ता है | पर परमाणु का स्वभाव बदल देता है, इसलिए परमाणु जैसा है वैसा नहीं दिखता है | बड़ी उम्र में कितने ही पुरुषों स्त्री के संग से स्त्री जैसे हो जाते है और कितने ही स्त्रीयो पुरुष के संग से पुरुष के जैसी हो जाती है | ज्ञात सत्ता तटस्थ, निर्विकार रहना चाहिए | पर संबंध और संघ में ध्यान न रहे तो ज्ञाता और ज्ञेय मायावाला बन जाता है संबंध वाली प्रक्रिया को अंग्रेजी में Relational thinking कहते है | यूरोप में और अमेरिका में सापेक्षवाद की खोज होने के बाद बहोत से विद्वान् ज्ञात सत्ता मानने लगे है उसे दृष्टि-सृष्टिवाद कहते है | हिन्द में मूर्ति पूजा में दृष्टि- सृष्टिवाद है | उसमे दर्शन के अनुसार मूर्ति जवाब देती है | मीराबाई गिरधरीलाल की मूर्ति के साथ बाते कर सकते थे | और श्री रामकृष्ण परमहंस दक्षिणेश्वर में काली माता के साथ बाते कर सकते थे | बहोत से भक्तो के चरित्रोमे जो सिद्धिया देखने में आती है वो ज्ञात सत्ता का प्रभाव है इसलिए अविद्याका आश्रय खोज ने से पहले ज्ञान की प्रक्रिया अथवा दृष्टि- सृष्टिवाद की प्रक्रिया समझना जरुरी है | अविद्या का आश्रय और विषय दोनों ब्रह्म मानिये तो ब्रह्म को पूछकर निश्चित नहीं हो सकता है कारण की ब्रह्म के पास अविद्या नहीं | व्यवहार में भी जिनमे अविद्या हो उसमे भी कुछ ना कुछ ज्ञान तो होता है, इसलिए दृष्टि- सृष्टिवाद प्रक्रिया ज्यादा अच्छी है |

मुख्य बात ये है की प्रश्न की मर्यादा ठीक तरह से समझना चाहिए और प्रश्न ठीक करने की रीत सिखना चाहिए | इस बारे में थोडा विवरण परिशिष्ठ दिया हुआ है | नया प्रश्न पूछने की शक्ति भी आना चाहिए | जगत कैसा है ये जानने के लिए तुम्हारे जगत में क्या चाहिए है? अथवा अलग अलग मनुष्य जगत का कैसा कैसा अर्थ करता है वो समझने से सच्ची पद्धति से पता चलेगा|

प्रकरण : 18
भेद का स्वरुप

भेद के स्वरुप के लिए वेदांत सिद्धांत मुक्तावली में अच्छा विचार किया हुआ है | वहा भेद को विशेषण रूप में लेकर वैसे ही विशेष्य रूप से लेकर विचार किया हुआ है और भेट सिद्ध करने में आत्माश्रय दोष वैसे ही अनोंन्याश्रय, चक्रिका, अनवस्था, प्राग्लोप और अविनीगमता दोष आता है, इसलिए भेद सिद्ध होता नहीं | फिर भी मनुष्य को खुद के बिच और जगत के बिच जो भेद (अथवा खली जगह) दिखता है वो भेद आया कहासे?

सृष्टि- दृष्टिवाद वाले ऐसा मानते है की जहा डोरी में भूल से साप दिखता है वहा इदंता (भेद) आधार रूप पड़ी हुयी है | वो इदंता डोरी दिखती है तब रहती है और साप दिखता है तब भी रहती है कारण की सामने कुछ तो पड़ा हुआ है उसमे भ्रान्ति होती है | दृष्टि- सृष्टिवाद वाले ऐसा मानते है की साप देखते वक्त जो इदंता दिखती है वो साप की है इसलिए भ्रान्तिरूप है | उन दोनों के आधार रूप नहीं | दृष्टि- सृष्टिवाद में विषय दृष्टि के पहले नहीं | जब भी साप दिखता है तभी वहा विशिष्ठ संबंध है याने की भेद सहित साप दिखता है | उस वक्त देखने वाला मनुष्य खुद के शरीर को एक जगह रखकर सामने साप को देखता है उसे अंग्रेजी भाषा में Objectification कहते है | कोई बार भाव संबंध भी बनते है | एक ही देवदत्त किसी का पिता होता है, किसी का पुत्र होता है, किसी का काका होता है और किसी का मामा होता है तो भेद सापेक्ष भाव से याने माया के भाव से बन सकता है | एक ही स्त्री किसी की मा होती है तब उसकी लड़की के लिए बड़ी लगती है | और किसी की लड़की होती है तब उसकी मा के लिए छोटी लगती है | एक ही स्त्री में छोटेपना और बड़ेपना देखनेवालो के दर्शन में से आता है |

सृष्टि- दृष्टिवाद में शुरुवात में ज्ञान के लिए आत्मा और अनात्मा के धर्म अलग अलग किये है | वहा धर्मी दो है | आत्मा स्वयं के सत्ता से सिद्ध है पर अनात्मा आया कहासे? और जब तक अनात्मा मिथ्या नहीं होता है तब तक भेद मिथ्या नहीं होता है | और भेद कहा से आया इस बात का पता नही चलता है | सांख्य दर्शन के जैसे अथवा जैन दर्शन के जैसे दो तत्व सच्चे मानकर विचार करने से भेद का सच्चा रहस्य नहीं जान सकते है |

कर्तुत्व का अध्यास दूर करने के लिए सृष्टि- दृष्टिवाद के नुसार बुद्धि में कर्तुत्व माना हुआ है और आत्मा में अकर्तुत्व माना हुआ है | वहा भी पहले आत्मा का और बुद्धि का भेद स्वीकार करके विचार करना पड़ता है | सुषुप्ति में बुद्धि अथवा अंतःकरण नहीं इसलिए कर्तुत्व भी नहीं और जाग्रत में अंतःकरण आया तभी कर्तापना आया, पर आत्मा का और अंतःकरण का भेद जाग्रत होने से किस तरह से आया वो निश्चित नहीं हो सकता है | जागने के बाद अहंकार का अध्यास होता है और देह का अध्यास होता है, वैसे ही मै ब्राह्मण हु, मै काणा हु, आदि का अध्यास भी होता है, फिर भी आत्मा और देह के बिच में और आत्मा और ब्राह्मणपना के बिच भेद कहा से आया इस बात का खुलासा सृष्टि- दृष्टिवाद के रीती से नहीं मिल सकता है | आत्मा के सिवा दूसरी वस्तु नहीं फिर भी अनात्मा जैसे कुछ तो दिखता है तभी देश- परिच्छेद होता है | ये समझने के लिए ऐसा माना हुआ है की " अत्यंताभाव प्रति योगित्वंम देश- परिच्छेदकत्वंम " इस रीती से अनात्मा का अभाव समझने के लिए वेदांत में ग्रहण किया है | उसमे निषेध की रीत है | जिसका निषेध होता है वो कल्पित प्राप्तवत मानना पड़ता है, याने की जिसका अनात्मा कल्पित प्राप्तवत है वैसे देश- परिच्छेद भी कल्पित प्राप्तवत है, फिर भी उसमे दृश्य का विचार रहता है और भेद फुट से माप सकते है |

दृष्टि- सृष्टिवाद में दर्शन के पहले भेद नहीं और दृश्य नहीं | स्वप्न में जैसे दर्शन में से दृश्य और भेद एक साथ उत्पन्न होते है | और उसका प्रमाण तेज है वैसे जाग्रत में भी दर्शन में से भेद उत्पन्न होता है, और उसका प्रमाण तेज है अभी का सायन्स कहता है की,

Light moves as space lines instead of as straight line in space, याने की मायिक तेज से भेद पड़ता है | स्वप्न में जैसे चीजे अंतर्गत है वैसे जाग्रत में भी सब अंतर्गत है कारण के वो तेज का बना हुआ है |

सृष्टि- दृष्टिवाद में ऐसा माना हुआ है की स्वप्न में जैसे अज्ञान है वैसे जाग्रत में अज्ञान है और भेद और पदार्थ अज्ञान के कार्य है | अज्ञान के कार्य मानने में काल का विचार पहले करना चाहिए | काल समझे बिना कारण- कार्य भाव नहीं समझ सकते है | दृष्टि- सृष्टिवाद में कारण- भाव नहीं अथवा वो सापेक्ष है अथवा मायिक है, याने की देश, काल, भेद आदि दर्शन के अंदर है और दर्शन बदलता है तो थोड़ी देर भी नहीं टिकता है | अभी का सायन्स कहता है Causation is not continuous in unrelated system याने की जहा अवस्था का संबंध नहीं वहा कारण- कार्यभाव नहीं बनता है | स्वप्न में चीजे नहीं | उसे रहने जितनी जगह नहीं और उसे रहने जितना काल नहीं, चीजे, काल भेद आदि

सब तेज के प्रमाण के आधार पर परस्पर के संबंध के आधार पर टिके हुए है अथवा दर्शन के आधार पर टिके हुए है | इसलिए यदि दर्शन बदल जाता है तो ये सब नहीं रहता है | सिनेमा में भी ऐसा ही है | उसमे मनुष्य, नाच, रंग, नाम, भेद आदि बहोत कुछ दिखता है पर यदि पावर हाउस में से मिलती हुयी बिजली बंद हो जाय तो सिनेमा में अँधेरा हो जाता है | उसी तरह से जाग्रत अवस्था में मनुष्य यदि दुसरे विचार में पड़ जाता है तो उसके पाससे पसर होता दूसरा मनुष्य वो देख नहीं सकता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में ज्ञान का प्रकार समझना पड़ता है | सृष्टि- दृष्टिवाद में अज्ञान का प्रकार समझना पड़ता है | सृष्टि- दृष्टिवाद में भेद फुट से माप सकते है | दृष्टि- सृष्टिवाद में भेद तेज से मापते है | तेज के माप से माया का स्वरुप ज्यादा स्पष्ट होता है | छोटे बालक को कुर्सी बड़ी लगती है, और बड़े मनुष्य को वो ही कुर्सी छोटी लगती है, ये भेद तेज के प्रमाण से दर्शन के द्वारा पड़ता है | भगवान जैसे स्वयं के माया से स्वयं के अंदर ही खेलते है वैसे जिव भी खुद के ज्ञान को माया में लाकर खुद के अंदर ही खेलता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में अनात्मा अथवा देह अथवा बुद्धि या क्रिया दर्शन के पहले नहीं, जब भी वो दिखती है तभी वो मायिक ज्ञान का रूप है, इसलिए ज्ञात सत्ता के अंदर है और प्रतिभासिक है | सृष्टि- दृष्टिवाद में अज्ञात सत्ता है और व्यावहारिक है | उसमे पहले देह कहासे आया? भेद कहा से आया? उसका पूर्ण विवरण मिलेगा नहीं | भेद मिथ्या है कारण की दूसरी दशा में बाध हो जाती है पर जिस दशा में भेद का अनुभव होता है उस दशा में सब दर्शन स्वप्न के जैसे अविनाभाव संबंध से अंदर रहते है |

जो जो प्रवृत्ति होती है वो इष्ट सधानतावाले ज्ञानपूर्वक होती है उसे अंग्रेजी में Symbolic knowlege कहते है | सब का इष्ट समान नहीं होता है, इसलिए इष्ट के अनुसार दर्शन रहता है और दर्शन के अनुसार दृश्य रहता है |

सृष्टि- दृष्टिवाद में ऐसा माना हुआ है की बालक जन्म से स्तन- पान के लिए प्रवृत्ति करता है, वो इष्ट साधन का ज्ञान है | वो इस जन्म में नहीं हुआ इसलिए जन्मानतर की कल्पना करनी पड़ती है | दृष्टि- सृष्टिवाद के अनुसार बालक के ज्ञान की बड़े मनुष्य को पूरा पता नहीं होता है | बड़ा मनुष्य बालक के जैसा होने के सिवा उसे बालक के जीवन का पता नहीं होता है | बालक की एक प्रवृत्ति ऊपर से उसके भूतकाल का अनुमान करना ठीक नहीं | बालक की संपूर्ण अवस्था नहीं जान सकते है | राम और कृष्ण जो स्तन- पान किया था वो पूर्व जन्म के संस्कार का परिणाम नहीं था | भूतकाल का विचार, देखनेवाले मनुष्य के मन में है, बालक के मन में नहीं | दर्शन का साहित्य समझने में बहोत सूक्ष्म बुद्धि की जरुरत पड़ती है | जिस प्रवृत्ति से भेद लगता है वो भी इष्ट- साधना पूर्वक की होती है, पर वो भेद दर्शन में है, दृश्य में नहीं | श्री रमण महर्षि कहते है की तुम वर्तमान काल भी संपूर्ण नहीं जान सकते है तो भुत या भविष्य किस तरह से जान सकते हो? जानने जाओ तो वर्तमान के जैसे भुत अथवा भविष्य हो जाओगे |

प्रकरण : 19

न्याय

न्याय में बहोत से प्रकार है | शाश्त्र के अनुसार न्याय दर्शन में सत पदार्थ मने हुए है | उसे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और आभाव कहते है | जहा पाठशाला होती है वहा वो समझाया जाता है | आत्मा को भी एक द्रव्य मानने में आता है |

कोर्ट में जो न्याय चलता है उसमे पुरावा मुख्य है और दलील किस तरह से करना चाहिए वो अंग्रेजी रीती से सिखाने के लिए कायदे की कॉलेज खोलने में आयी है |

आर्ट्स कॉलेज में ग्रीक तत्ववेत्ता अरिस्टोटल का न्यायशाश्त्र चलता है | उसमे जाती, व्यक्ति, प्रमाण आदि का विचार आता है | उसमे मन तक पहोचाते है | मन से ऊपर के तत्व के लिए प्रमाण नहीं देते है |

वेदांत में जो भी न्याय की रीत चलती है उसमे छे प्रमाण का अभ्यास करने में आता है, और वाद करने के लिए वाद, जल्प और वितंडाके गुण दोष समझाने में आते है; वैसे ही लाघव गुण और गौरव दोष की रीत भी बताने में आती है | उस उपरांत पाच ख्याति की रीती से अथवा पाच न्याय करने में आते है |

जैसे पदार्थ का न्याय होता है वैसे संबंध का भी न्याय होता हैं | संबंध का न्याय युरोप अमेरिका में अस्सी वर्ष पहले से ही शुरू हुआ है | उसे Logic of relation कहते है |

वेदांत में निचे बताये नुसार चार प्रकारके संबंध के विचार आते है |

1) संयोग- संबंध दो साकार वस्तु के बिच में बनता है; जैसे की दूध और पानी का संयोग |

2) समवाय- संबंध भी दो साकार वस्तु के बिच बनता है ; जैसे की तंतु और पट

3) तादात्म्य- संबंध भी इसी प्रकारका है; जैसे की तपेला लोहा | इसमें लोहेका और अग्नि का तादात्म्य पना है |

4) अध्यात्मिक संबंध आत्मा और अनात्मा के बिच होता है | दोनों के धर्म को मिलाने से अध्यात्मिक संबंध होते है | ज्ञान होता है तब वो संबंध दूर होता हैं |

संबंध का न्याय समझना ये मुश्किल बात है | कोर्ट में खून का केस चलता हो तब बचाव पक्षवाले इतना सिद्ध करते है की जिस वक्त खून हुआ उस वक्त आरोपी को अमुक साक्षी ने दूसरी जगह देखा था | वो इस तरह से संबंध तोड़कर बचाव कर सकता है |

स्वप्न में किसी ने दस मनुष्य देखे | उसमे एक मै और नौ मै नहीं ऐसा संबंध मन से होता है | वो ही मन जिसको मै मानता है उसे सुखदुःख होता है तो वो सुखदुःख खुद को हुआ ऐसा मानता है और दुसरे को सुखदुःख होता है तो वो खुद को होता है ऐसा मानता नहीं | जितने भाग में अहं बुद्धि है उतने में जीवत्व लगता है और दुसरे में निर्जिवत्व लगता है | इसलिए मेरा सुख ये एक शरीर में लगता है | स्वप्न में रहे हुए दुसरे जिव सुखी हो तो वो सुख मेरा है ऐसा लगता नहीं |

स्वप्न में मन दो जगत उत्पन्न करता है | एक अंदर का जगत और एक बाहर का जगत | बाहर के जगत को वो रूप देता है पर जितनी ममता होती है उतना ही संबंध होता है | जितनेमें मै और और मेरा पना, उतने प्रदेश को अवच्छेद करनेवाला मन सुखादिक का अवच्छेद होता है | जाग्रत में भी ऐसा ही है | जिस शरीर में इदंता का ज्ञान होता है और जिसमे ममत्व नहीं वो उसे निर्जीव लगता है, कारण की दुसरे के सुखदुःख खुद के नहीं होते है |

एक मनुष्य ने खुद के कुटुंब को कहा की मेरा एक दूसरा नाम रखो | उस दुसरे नाम में भी उसे समान प्रीती रहती है, कारण की उसमे समान ममत्व है |

लगभग पचास वर्ष पहले संबंधवाले न्याय को बिज गणित की और भूमिति की मदत मिली और तबसे यूरोप और अमेरिका में अनुरंजित ज्ञान के द्वारा अर्थवाला न्याय शुरू हुआ | उसे Symbolic logic कहते है | श्रीकृष्ण जब कंस को मरने के लिए मल्ल के आखाड़े में प्रवेश किया तभी वो मल्ल को वज्र जैसे लगे, कंस को कालरूप, गोपियों को प्रेमरूप और योगियों को परमतत्व रूप लगे | उसमे प्रत्येक देखनेवाले में खुद के इष्ट के अनुसार अनुरंजित ज्ञान था | भाषा हमेशा अर्थवाली होती है, उपासना अर्थवाली होती है, उसी तरह से ज्ञान और क्रिया भी कोई न कोई हेतुवाली अथवा उद्देश वाली होती है | इन सबमे संबंधवाला न्याय चालू रहता है | जैसे की :- कोई विद्यार्थी वकीलात की परीक्षा हेतु अभ्यास कर रहा है | उसमे संस्कृत भाषा ये परीक्षा का विषय नहीं | धर्म शाश्त्र ये परीक्षाका विषय है, और धर्मशाश्त्र अच्छी रीती से समझे उसके लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान होना जरुरी है | वो होने के लिए संस्कृत भाषा का होता हुआ अभ्यास ये वकिलात का ही अभ्यास है | जब भी एक क्रिया दूसरी क्रिया को सहायभुत होती है तब वो सहायभुत क्रिया को दूसरी क्रिया का रूप (form) प्राप्त होता है | याने की दोनों क्रिया का उद्देश एक ही होने से पहली क्रिया दूसरी क्रिया का अंग होती है | इसलिए जिस उद्देश से जो क्रिया करने में आती है वो उद्देश (symbol) के अनुसार उस क्रिया का स्वरुप रहता है |

उसी तरह से जो सांसारिक प्रवृत्ति मोक्ष प्राप्ति के लिए की गयी हो ती वो परमार्थ प्रवृत्ति ही समझना चाहिए और सांसारिक अथवा विषय सुख के लिए किये गए सभी पारमार्थिक कर्म सांसारिक प्रवृत्तिवाले मान सकते है जैसे की हिन्द की पार्लमेंट की पाच वर्ष की योजना |

पाठशाला में धर्म का ज्ञान देने में मुश्किली हो रही है, उसका कारण भी उद्देश के ऊपर ही है | बुद्धधर्मवालोने अहिंसा का सिद्धांत शुरू किया पर बस्ती बढ़ी इसलिए चीन और जापान वालो ने बुद्धधर्मी होने के बावजूद मांसाहारी हो गए | पाकिस्तान धर्म की जाग्रति के लिए नया देश हुआ, पर बस्ती बढ़ जाने से अर्थशाश्त्र के ऊपर ज्यादा ध्यान देना पड़ता है | काम- शाश्त्र भी अभी धर्म के अनुसार नहीं चलता है | संचा की खोज होने के बाद भोग के साधन बढे और निःश्रेयस का तत्व दब गया |

जगत ये ब्रह्म का अविर्भाव है ऐसा समझाना उसे अन्वयभाव कहते है अथवा Deductive logic कहते है |

जगत के विकारी धर्म चेतन में नहीं रहते है, इस रीती से चेतन की शुद्धि समझाना उसे व्यतिरेक भाव अथवा Inductive logic कहते है | भगवान का प्रमाण मनुष्य के दृष्टि से नहीं माप सकते है | इसलिए शाश्त्र में अन्वय और व्यतिरेक दोनों रीत मानी हुयी है |

विकारी वस्तु को विकार का ज्ञान नहीं होता है, इसलिए विकार अथवा परिणाम जानने के लिए देखनेवाला अलग रहना चाहिए | उसकी जगह निश्चित करना चाहिए | वो अलग रहता है तो द्वैत होता है और साथ में रहता है तो विकारी होता है | पृथ्वी के ऊपर खड़ा रहा हुआ मनुष्य पृथ्वी की गति को नहीं देख सकता है, इसलिए तटस्थ रहने की जरुरत है | पर उसमे सांख्य जैसा पुरुष रहे तो द्वैत मानना पड़ता है | इसलिए दृष्टि- सृष्टिवाद के अनुसार ज्ञान की संपूर्ण अवस्था सम-काल प्रतीति रूप लेना चाहिए | ज्ञाता और ज्ञेय का एक काल चाहिए और दोनों के बिच कोई भेद नहीं चाहिए | वो काम दृष्टि- सृष्टिवाद से बन सकता है |

प्रकरण : 20

दर्शन की महिमा

अखंडभाव से दर्शन करना सिखना और सिखाना उसमे दर्शन की महिमा है और दर्शन की सरलता है |

Simplicity means reduction of everything to wholeness.

अखंडभाव से देखने की आदत कर लेने से याद शक्ति भी बढती है | जो वस्तु सरल हो वो तुरंत ही याद रहती है | द्वैत भाव सरल नहीं | उसे मिथ्या मानने में मनुष्य को मुश्किली होती है | उसे रखने में क्लेश है | विचार की रीत बदलना आ जाय तो अखंडभाव ज्यादा सरल है | उसमे याद रखने की वस्तु एक है | उससे सब का ज्ञान होता है | ‘ एकेन विज्ञानेन सर्व विज्ञातं भवति ‘ ये उपनिषद् की प्रतिज्ञा वाक्य है | जीवन सत्य करना हो तो साधन भी सत्य चाहिए |

स्वप्न स्वप्न के वक्त व्यावहारिक है, और जाग्रत है, जागने के बाद वो स्वप्न हुआ याने विचारकी रीत में बदलाव हो गया | बाद में सरलता आ जाती है और सब मै ही था ऐसा ज्ञान तुरंत ही हुआ |

अज्ञात वस्तु का अस्तित्व सिद्ध नहीं हुआ और अज्ञान भावरूप है ऐसी दोनों बातो में विरोध लगता है | जो भाव रूप होता है उसका अस्तित्व होता है | इसलिए अज्ञान अथवा माया अनिर्वचनीय कहलाता है | स्वप्न में अज्ञान था ऐसा कहने के लिए अमुक प्रकारका ज्ञान था ऐसा कहकर ज्ञानी को समझने का प्रयत्न किया जाय तो उसमे ज्यादा सरलता है और अखंड भाव से चिंतन हो सकता है | विकार वस्तु को विकार का ज्ञान नहीं होता है, इसलिए स्वप्न का जिव स्वयं को तेजस ऐसा नहीं जान सकता है, उसका मुख्य कारण ये है की स्वप्न भोग प्रधान है | देवलोक भी भोगप्रधान है होने से देवो को आत्मज्ञान नहीं होता है | वहा तेज से पदार्थ तैयार होते है | अभी जाग्रत में भी सभी देश भोग्प्रधन होते चले है, इसलिए विवेक बुद्धि जाग्रत नहीं होती है | भौतिक सायन्स में तेज की शक्ति मनुष्य के हाथ में आयी है, इसलिए सिनेमा, रेडिओ, बिजलीके सुविधाए की जो अकबर बादशाह भी नहीं भोग सकता है वैसी सुविधाए अभी का मनुष्य भोगता है | इसलिए दर्शन की महिमा से भी दृश्य की महिमा ज्यादा गयी हुयी है |

श्री शंकराचार्य ब्रहमज्ञान के लिए साधन चतुष्टय की जरुरत मानते है | वो अभी के भोगी समाज की रीती से मिल सके ऐसा नहीं है | अभी का मनुष्य समाज की रीती से बाहर के वस्तुओ ऊपर सुख का आधार रखता है इसलिए उसकी पराधीनता बढती है और वो प्रारब्ध को सत्य मानता है| उसका ज्ञान उसे सुखरूप नहीं होता है | उस ज्ञान को कुछ मिलता है तब सुखी होता है | पर अद्वैत दर्शन में ज्ञान का विषय ब्रह्म है | अद्वैत ज्ञान खुद ही आनंद रूप है और सुखरूप है | उसे सुख के लिए दूसरी वस्तु की जरुरत नहीं पड़ती है |

दृष्टि- सृष्टिवाद में प्रारब्ध सत्य नहीं, कारण की काल सत्य नहीं | ब्रह्म में काल का परिच्छेद नहीं और देश का परिच्छेद नहीं | जहा देश- परिच्छेद न हो वहा गति की संभावना नहीं | इसलिए ब्रह्म में से जगत किस तरह से हुआ वो बहोत लोगो को समझमे नहीं आता है | स्वप्न के वक्त स्वप्न की गति भी समझती नहीं | भोग- शक्ति खुद के आश्रय को विषय नहीं बना सकती है पर ज्ञान शक्ति खुद के आश्रय को विषय बना सकती है | यहाँ ज्ञान याने विवेकज्ञान समझना है | जहा अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान रहता है वहा विवेक ज्ञान नहीं रहता है |

ज्ञानी को किसी के साथ विरोध नहीं, कारण की उसका विषय अखंड दर्शन है | जहा दो व्यक्ति के विषय भिन्न होते है वहा झगडे का कोई कारण ही नहीं रहता है | जिस समाज में और जो जो देश में मात्र अर्थशाश्त्र का ही विषय होता है वहा झगडा रहता है | इसलिए युद्ध नहीं टाल सकते है | जो वस्तु देश परिच्छिन्न होती है वो काल- परिच्छिन्न होती है | जो पूर्ण है वो नित्य है | उसके लिए मन स्वस्थ चाहिए | मन जब तक स्वस्थ याने आत्मा में नहीं होता है तब तक अस्वस्थ ही रहता है |

जब भी जीवन का हेतु बदलता है तभी नए जीवन की शुरुवात होती है | नयी शुरुवात में नया धर्म रहता है | गुण का ग्रहण ये गुणी के ग्रहण का व्यापक है | उन दोनों के बिच में अविनाभाव संबंध रहता है | Points are constructed by a bundle of events अहंकार कर्म के अभिमान से बनता है | इसलिए अच्छे कर्म करने के बावजूद भी कर्म को महत्त्व नहीं देना चाहिए | जो कर्म करने के लिए हम स्वतंत्र है वो कर्म न करना भी अपने ही हाथ में होना चाहिए | उसके लिए विवेकज्ञान चाहिए और अपना जगत ज्ञात- सत्तावाला चाहिए |

दृष्टि- सृष्टिवाद का अर्थ ये है की दुसरे दृष्टा से अवेद्य हो और सदा ज्ञात- सत्तावाला हो | स्वप्न के दृष्टांत में एक मनुष्य का स्वप्न दुसरे मनुष्य से अवेद्य है और ज्ञात सत्तावाला है | उसमे एक ही दृष्टा सच्चा है | दूसरा जिव वो दृष्टा के दृश्य में है इसलिए उस उस वक्त दृष्टा नहीं | जाग्रत में भी एक ही दृष्टा सच्चा है और दुसरे दृष्टा पहले दृष्टा के दृश्य के अंदर है इसलिए वो पहले की दशा नहीं जान सकते है | ज्ञात सत्ता का अभ्यास अखंड दर्शन प्राप्त करने के लिए बहोत उपयोगी है |

आत्मा तो प्राप्त ही है और ज्ञान स्वरुप है इसलिए उसके लिए क्यों मेहनत करना चाहिए ऐसे अति परिचय से आत्मा की अवज्ञा होती है | सच्ची रीत ऐसी है की जो प्राप्त है वो सर्व व्यापक है इसलिए अन्वयभाव भी अपनाना चाहिए | उसे ही ब्रह्मभाव कहते है, एक जगह का आत्मा जो सांख्य का पुरुष जैसा है | ब्रह्मभाव प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ चाहिए | जब भी ब्रह्मभाव के लिए मनुष्य एकदम निष्क्रिय बनता है तभी उसमे जिज्ञासा ही नहीं | जो वस्तु चाहिए हो उसके लिए तीव्र जिज्ञासा चाहिए | इसलिए ब्रह्मसूत्र में पहला सूत्र ये जिज्ञासा का सूत्र है | जिस बारेमे मनुष्य प्रारब्ध की बात करते है उस बारे में वो उदासीन होते है | ब्रहभाव में सभी खुद के लगते है | उसमे पुरुषार्थ है | उस वक्त किसीका डर नहीं लगता है | कोई अज्ञानी मनुष्य जंगल में अकेला पड़ा हो और सोने की तैयारी करता हो वहा कोई अपरिचित प्रवासी आकर सो जाय तो उसे निर्भयता से नींद नहीं आयेगी| पर यदि वो ही प्रवासी उसका मित्र हो तो भय नहीं लगेगा | उसी तरह से ब्रह्मभाव से संपूर्ण जगत खुद का करना है और उसके लिए योग्य दर्शन प्राप्त करना ये पुरुषार्थ है |

आरंभवादी कारण से कार्य को भिन्न मानते है | तंतु से कापड भिन्न मानते है | परिणाम वादी कार्य को कारण का अवस्थान्तर मानता है जैसे की दूध में से हुआ दही और विवर्तवाद में कारण में कोई भी बदलाव या विकार हुए बिना एक ही वस्तु दुसरे रूप से दिखती है | जैसे की रज्जू में साप| विवर्तवाद से दर्शन शुद्ध हो जाता है |

सामान्य दृष्टि से ऐसा समझ में आता है की घड़ा बनाने के लिए मिटटी उपादान कारण है और कुंभार निमित्त कारण है | पर दृष्टि- सृष्टिवाद की रीती से देखा जाय तो घड़ा कार्य के पहले और घड़ा होने के बाद घटाकार बुद्धि रहती है | इसलिए बुद्धि अथवा ज्ञान घटादी का उपादान कारण है | और ज्ञान अथवा चेतन सर्वव्यापक है इसलिए मनुष्य घट को नहीं देखता है पर घटावच्छिन्न चेतन को देखता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में निमित्त कारण भी ज्ञान ही है | जब स्वप्न खुद का बनाया हुआ है ऐसा लगता है तो उसे बदला भी जा सकता है |

मनुष्य ब्रह्मज्ञानी हुआ तो वो ज्ञान किस प्रकारका होगा? किसी कमरेमे मनुष्य अकेला हो तो वो खुद की नजर में खुद नहीं ऐसा उसे नहीं लगता है | उसी तरह से ब्रह्मदशा में सर्वात्मभाव का अस्तित्व है | दुसरे की हाजिरी में श्रृंगार- रस नहीं भोग सकता है |

जो जगत एक काल में दिखता है वो सब साथ एक अवस्था के अंदर रहा हुआ है, उसी तरह से देखना चाहिए | मन एक समयावच्छेद से दो पदार्थ को नहीं देख सकता है | यदि दो पदार्थ देखने हो तो उसके लिए भिन्नकाल चाहिए | स्वप्न के पदार्थ स्वप्न के काल से एक साथ अनुभव होते है | उसे अलग जानना हो तो दुसरे काल का उपयोग करना चाहिए | स्वप्न के काल से वो अलग नहीं देख सकते है | जाग्रत में भी ऐसा ही है | अभी के सापेक्षवाद के विज्ञान वाले भी कहते है की form means internal structure.

यदि द्वैतभाव की बहोत ही आदत पड़ी हो तो अद्वैत भाव में कोई देखावा नहीं | बहोत गर्मी (सूर्य प्रकाश)

में से एकदम घर में आते ही मनुष्य की आँख अंधी हो जाती है | अद्वैत दर्शन के लिए नयी आदत डालना चाहिए और वो पुरुषार्थ है |

सुषुप्ति में कोई कहता है की, अज्ञान है, वो जाग्रत की दृष्टि से सुषुप्ति का विचार करने से बनता है कारण की उसमे जाग्रत के जैसे ज्ञान नहीं | शाश्त्र कहते है की सुषुप्ति का अभिमानी प्राज्ञ है | वो सुषुप्ति के दृष्टि से सुषुप्ति का विचार है | सुषुप्ति में पत्थर के जैसा अज्ञान नहीं | पत्थर में से ज्ञान नहीं निकलता है और सुषुप्ति में से ज्ञान निकलता है | और सुषुप्ति में आत्मा निष्प्रपंच है और आत्मा स्वयं का स्वभाव नहीं छोड़ता है, इसलिए स्वप्न में और जाग्रत में भी आत्मा निष्प्रपंच है|

सृष्टि- दृष्टिवाद के वेदांत में रज्जू और साप साथ में नहीं रह सकते है | उसी तरह से ब्रह्म और जगत साथ में नहीं रह सकते है | दृष्टि- सृष्टिवाद में दृश्य ये ज्ञान का रूप है | ब्रह्म सर्व व्यापक होने से दृश्य का अधिष्ठान है | इसलिए जैसे गहने में सोना रहता है वैसे ही दृश्य में चेतन रहता है | दृष्टि- सृष्टिवाद में ज्ञान का विषय भी ज्ञान ही है और आश्रय भी ज्ञान ही है और वो अबाधित है | स्वप्न में स्वरुप ज्ञान अबाधित है, पर भोग की वृत्ति से उसका पता नहीं चलता है | जाग्रत में भी ऐसा ही है | दृष्टि- सृष्टिवाद में अन्वय- व्यतिरेक निचे बताये नुसार रहता है |

यदभावे तद्भावं - ये अन्वय है |
यदभावे तदभाव - ये व्यतिरेक है |

अधिष्ठान का अभाव नहीं होता इसलिए मात्र अन्वय रहता है | मिथ्यत्व का अर्थ ये है की खुद के अभाव के अधिकरण में खुद की प्रतीति होना | जहा दृष्टि- सृष्टिवाद है वहा खुद के अभाव में खुद की प्रतीति नहीं | वहा ज्ञान का ज्ञेय है व्यतिरेक नहीं बनता है | अन्वय में ज्ञात सत्ता है | उसमे सब समां जाता है इसलिए अज्ञात कोई नहीं रहता है |

जगत में जो विचित्रता दिखती है वो अज्ञान की विचित्रता नहीं पर दर्शन की विचित्रता है | उसका कारण भोग की विचित्रता है | जिज्ञासु खुद खुदके भोग की वृत्ति ठीक करता है | और मुक्ति का अनुभव ले सकता है | जिसको भोग अच्छा लगता हो उसे उसमे बंधन नहीं लगता है | जो सो गया हो उसे जगाया जा सकता है और जो जन बुझ कर सो गया हो और जिसे नींद अच्छी लगती हो उसे नहीं जगाया जा सकता है | जिनको विषय अच्छे लगते हो उसे बोध नहीं दे सकते है | इसलिए आत्मज्ञान में बहुमति का प्रमाण काम नहीं करता है | जिसका दर्शन ठीक होता है उसके कर्म समाप्त हो जाते है | कारण की वहा समरूपी ब्रह्म की प्राप्ति है |

परिशिष्ट

प्रश्न की मर्यादा

बृहदरण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य और शाकल्य के संवाद में प्रश्न की मर्यादा निचे दिए अनुसार बतायी है :-

शाकल्य याज्ञवल्क्य को पूछते है - अग्निदेव किस्मे रहते है?
याज्ञवल्क्य - वाणी में
शाकल्य - वाणी किसमें रहती है?
याज्ञवल्क्य - ह्रदय में वाणी नाम, रूप, और कर्म सहित रहती है |
शाकल्य - ह्रदय किसमे रहता है?
याज्ञवल्क्य - समान आत्मा में |
शाकल्य - आत्मा किसमे रहता है?
याज्ञवल्क्य - ये अति प्रश्न है, कारण की तेरा प्रश्न आत्मा में भेद मांग रहा है | अभी तेरा सिर धड से अलग हो जायेगा | (उस वक्त जनक की सभा में शाकल्य का सिर धड से अलग हो कर गिर गया)

2

स्वामी मधुसुदन रचित ' अद्वैत- रत्न- रक्षण ' ग्रन्थ में निचे बताये नुसार अति प्रश्न आते है |
वो यहाँ पर थोड़े बदलाव करके दिए गए है :-

शिष्य- जो जिव ब्रह्म से अभिन्न है तो संसार की अवस्था में ' आनंद रूप ब्रह्म से अभिन्न हु ऐसा ज्ञान क्यों नहीं होता है?

गुरु- अविद्या रूप आवरण से ब्रह्म आवृत्त है |

शिष्य- पर कहते हो की अविद्या है ही नहीं?

गुरु- ब्रह्म ज्ञान के उत्पत्ति पहले अविद्या मान सकते है | और ब्रह्माकार वृत्ति से अविद्या निवृत्त हो जाती है |

शिष्य- मेरे ह्रदय में ऐसी वृत्ति क्यों नही होती है?

गुरु- तेर ह्रदय पत्थर जैसा है ऐसा लगता है |

शिष्य- आप मेरे ऊपर आक्षेप कर रहे हो तो आपके ह्रदय में द्वैत है या अद्वैत है?

गुरु- मै इश्वर को प्रार्थना करता हु की तेरा ह्रदय शुद्ध कर दे, तू भी ऐसी प्रार्थना कर |

शिष्य- मेरा मन विषयोसे विक्षिप्त है, इसलिए इश्वर की उपासना मेरे से नहीं होती |

गुरु- विषयो में दोष दृष्टि कर, मन और वाणी का निग्रह कर, तत्वज्ञान से सब में परमात्मा को देख | इससे विपरीत भाव ये अज्ञान है |

शिष्य- ये साधन भी यदि कोई ना कर सके तो क्या करना चाहिए?

गुरु- भगवान का स्मरण करना |

शिष्य- ये भी न हो तो क्या करना चाहिए?

गुरु- सभी कर्म भगवान को अर्पित करना चाहिए |

शिष्य- ये भी मेरे से नहीं हो सकता है |

गुरु- तेरा आत्मा पत्थर जैसा है |

शिष्य- क्यों आपके मत में अनेक आत्मा है जैसे की आप मुझे पत्थर जैसा कहते हो?

गुरु- तेरे में योग्यता नहीं |

शिष्य- आप गुरु हो तो मेरे में योग्यता ला सकते हो | नहीं तो तुम्हारा गुरु पद किस कामका?

गुरु- तू ब्रह्म ही है इसमें श्रद्धा रख |

शिष्य- ब्रह्म तो असंसारी है और मै संसार देखता हु | वो दोनों का अभेद किस तरह से होगा?

गुरु- वाच्यार्थ में भेद है और लक्षार्थ में अभेद है |

शिष्य- मेरे से लक्ष्यार्थ क्यों नहीं समझमे आता है? मेरे में विद्या और अविद्या दोनों साथ ही है ऐसा लगता है |

गुरु- प्रपंच में पारमार्थिकपना बताने वाला अंश के साथ विद्या का विरोध है | प्रतिभासिक अंश के साथ विरोध नहीं |

शिष्य- आप क्यों व्यवहार करते हो?

गुरु- वास्तव में सब जगत देखनेवाले की अवस्था के सिवा कुछ नहीं | इसलिए जिसको व्यवहार दिखता है उसे खुद का दर्शन ठीक करना चाहिए |

शिष्य- ब्रह्म में मिथ्या दर्शन आया कहासे?

गुरु- ये सृष्टि- दृष्टिवाद का प्रश्न है | इसलिए सृष्टि के पहले कब हुयी इस बात की पहले खोज करनी चाहिए | उसमे काल का प्रश्न है और काल का आधार दर्शन के ऊपर है | स्वप्न का काल जाग्रत में नहीं रहता है और जाग्रत का काल सुषुप्ति में नहीं रहता है | ब्रह्म में उत्पत्ति, स्तिथि और लय नहीं | सटी अनुसया ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को बालक बना दिया था; इसलिए तू अनुसया और अत्री के शरण में जा |

3

अति प्रश्न का तीसरा प्रसंग ' वेदांत सिद्धांत मुक्तावली ' में निचे दिए है :-

शिष्य- द्वैत का दृष्टा कौन है? अविद्या कल्पित होती है तो अविद्या का कल्पक कौन?

गुरु- तू, की जो मुझे प्रश्न पूछता है वो |

शिष्य- मै कौन हु?

गुरु- तू ब्रह्म है |

शिष्य- तब तो ब्रह्म विकारी होगा | मै द्वैत का दृष्टा याने की विकारी हु, इसलिए ब्रह्म भी विकारी हुआ |

गुरु- दर्शन से अतिरिक्त दृश्य का आभाव है | ब्रह्मदृष्टि का अभाव है |

शिष्य- जगत की प्रतीति क्यों होती है?

गुरु- विवर्तसे याने जगत की प्रतीति विषम सत्तावाली है पर वस्तु एक ही है | तुमको झूठी प्रतीति होती है |

शिष्य- मै कहा से आया?

गुरु- ये सृष्टि- दृष्टिवाद का प्रश्न है, इसलिए सृष्टि पहले कब हुयी उसकी जाँच करना चाहिए | उसमे काल का प्रश्न है और काल का आधार दर्शन ऊपर है | स्वप्न का काल जाग्रत में नहीं रहता है और जाग्रत का काल ब्रह्म दशा में नहीं रहता है | जितने भी घटनाये जो मनुष्य खुद के मन में रखता है उस रीति से उसका काल बनता है और वो मनुष्य मरता है तब ऐसा कहा जाता है की उसका काल आ गया था |

ऊपर के जैसा प्रश्न स्त्री शंकराचार्य की गीता के भाष्य में (13- 2) निचे बताये नुसार दिया है :-

शिष्य- अविद्या किसे लिपटी हुयी है?

गुरु- जिसे दिखती है उसे लिपटी है |

शिष्य- किसे दिखती है?

गुरु- अविद्या किसे दिखती हा ये प्रश् ही झूठा है |

शिष्य- क्यों?

गुरु- यदि अविद्या दिखती हो तो वो अविद्या से युक्त पुरुष की जो अविद्यावान है उसे भी तू देखता है और यदि वो पुरुष तेरे देखने में आता है तो अविद्या किसकी है? ये प्रश्न योग्य नहीं | एक गाय का मालिक गाय को लेकर जाता हो तो तेरे देखने में आता है की ये गाय किसकी है इस प्रश्न का कोई अर्थ नहीं |

शिष्य- अविद्यावाला मै और उसे जाननेवाला मै तो पहला मै कहासे आया?

गुरु- ये रीती से अनवस्था दोष आयेगा | और कोई निर्णय नहीं हो सकता है | अविद्या से मै और मै से अविद्या उसे चक्रिका दोष कहते है | इसलिए अविद्या, और जिव दोनों अनादी माना जाता है वो सृष्टि- दृष्टिवाद की रीत है | दृष्टि- सृष्टिवाद में सब सम- काल- प्रतीति रूप है | एक का एक प्रश् पूछने से अच्छा नए प्रश्न उत्पन्न करना चाहिए |

शिष्य- नए प्रश्न किस तरह से उत्पन्न करना चाहिए?

गुरु- मनुष्य जीवन का हेतु क्या है? इस बारे में जाँच करना चाहिए | हमें भगवान ने यहाँ क्यों भेजा हुआ है? इस प्रश्न को value अथवा सुख का प्रश्न कहते है | इस रीती से नया दर्शन प्राप्त होगा | तुम्हे क्या चाहिए है वो पहले निश्चित करो और उस बारेमे प्रश्न पूछते हो तो तुरंत ही समाधान होगा | मनुष्य को जो अच्छा लगता है वो पहले दिखता है | जो भगवान ने किया वो पहले नहीं दिखता है |

4

अनुव्यवसाय ज्ञान

सामान्य ज्ञान जगत को और उसके परिणाम को देखता है उसे व्यवसाय ज्ञान कहते है | उसमे 24 घंटे का दिन है | दुसरा ज्ञान प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय और उसके संबंध को देखते है | उसे अनुव्यवसाय ज्ञान कहते है | उस ज्ञान के लिए दूसरा काल चाहिए | उसे साक्षी का काल कहते है| साक्षी हमेशा वर्त्तमानकाल में ही रहता है | राज्य और समाज परिणामवाद में ही रहते है और भुत और भविष्य उत्पन्न करते है | हमें काल का माप लेना है पर काल पूर्ण हो तब काल माप सकते है और काल पूरा होने के बाद कोई रहता नहीं इसलिए काल खुद नहीं माप सकते है, पर मायावाला काल माप सकते है |

ज्ञानी के लिए प्रातःकाल, प्रहर, शाम, रात्रि इस प्रकार से भिन्न भिन्न समय की प्रतीति नहीं होती है |

5

विवर्त

जहा सम सत्ता होती है वहा परिणाम दिखता है | जैसे की दूध में से दही वो दोनों व्यावहारिक सत्ता वाले है | जब भी विषम सत्ता दिखती है तभी विवर्त दिखता है | विवर्त में कारण जैसा कार्य नहीं होता है | रज्जू में साप दिखता है वहा रज्जू व्यावहारिक सत्ता में है और साप प्रतिभासिक सत्ता में है | सभी जाग्रत प्रपंच ब्रह्म के दृष्टि में विवर्त है कारण की ब्रह्म की सत्ता से विलक्षण है; पर जाग्रत में जो मनुष्य रहते है उसकी दृष्टि में जाग्रत प्रपंच परिणामवाले है | स्वप्न भी स्वप्न में रहनेवालो के लिए परिणाम बताता है | जागने के बाद स्वप्न विवर्त है | उसी तरह से ब्रह्म ज्ञान होने के बाद जाग्रत दशा को विवर्त कह सकते है |

6

श्री आनंदमयी मा के साथ उनके शिष्यों के प्रश्न

प्रश्न- सब भगवान करता है तो हमारे में से अपराध क्यों होते है?

उत्तर- भगवान सब करता है ऐसा कौन कह सकता है? जिसने भगवान को देखा हो वो कह सकता है | साधारण मनुष्य के लिए ऐसा प्रश्न ही झूठा है | वास्तव में वो भगवान को जानते ही नहीं|

प्रश्न- सभी एक ही रस्ते क्यों नहीं जाते है?

उत्तर- भगवान अनेक रूपों में प्रगट है इसलिए अनेक रास्ते है |

प्रश्न- भगवान को कहा ढूंढे?

उत्तर- वृक्ष में किसी जगह पर बिज की सत्ता नहीं? वैसे ही भगवान सर्वत्र है |

प्रश्न- नाम में बदलाव हो जाता है |

उत्तर- मनुष्य का पहले एक ही नाम था उसने कहा की मेरा एक और नाम रखो | उस वक्त वो दुसरे नाम से बड़ा या छोटा नहीं हो जाता है | वैसे ही सब नाम भगवान के है |

प्रश्न- प्रश्न क्यों उत्पन्न होते है?

उत्तर- जो स्तिथि में तुम प्रश्न कर कर रहे हो वहा से ऐसे ही प्रश्न निकलेंगे | वास्तव में तुम प्रश्न करते हो और तुम ही सुन रहे हो | भगवान सर्वत्र है | जब तक ऐसा ज्ञान नहीं होगा तब तक प्रश्न दूर नहीं होंगे | प्रोफ़ेसर और विद्यार्थी के बिच में प्रश्न - उत्तर होते है | भगवान में प्रोफ़ेसर नहीं और विद्यार्थी भी नहीं |

प्रश्न- अंतिम वक्त में शरीर का क्या होगा?

उत्तर- बाकि कोई नहीं रहेगा पर काल रहेगा | स्थूल शरीर जल जायेगा पर सूक्ष्म शरीर रहेगा वो ही काल है | भगवान हे बाकि कोई अलग नहीं इसलिए काल का प्रश्न ही नहीं रहता है | केवल सुख ही उसका स्वरुप है |

प्रश्न- नए मनुष्य जन्म लेते है या नही?

उत्तर- कोई नए नहीं | वृक्ष में नए पत्ते आते है तोभी बिज सत्ता वैसी की वैसी रहती है |

प्रश्न- दुःख क्यों आता है? मेरी स्री मर गयी तब से दुःख लगता है |

उत्तर- ठीक हुआ, तुम्हारी बिच का और भगवान के बिच का एक विघ्न दूर हो गया |

प्रश्न- जगत की उत्पत्ति, स्तिथि और लय होते है या नहीं?

उत्तर- जो मनुष्य ट्रेन में सो गया हो उसके लिए ट्रेन चलती नहीं | चेतन में जड़ता नहीं |

जल में हजारो तरंग उठती है वो जल के सिवा और कुछ भी नहीं |

प्रश्न- घूमना फिरना होता है या नहीं?
उत्तर- आत्मा घूमता फिरता नहीं वो सर्वत्र है |
प्रश्न- मै जगत में किसलिए आया हु?
उत्तर- भगवान अनेक रूप से खेलता है |
प्रश्न- मेरा दूसरा जन्म होगा की नहीं?
उत्तर- जिनमे पूर्व जन्म और पर जन्म के संस्कार होते है उसका दूसरा जन्म होता है | जिनमे ऐसे संस्कार नहीं उनका जन्म नहीं होता है |
प्रश्न- मेरे में जिज्ञासा है पर ज्ञान नहीं |
उत्तर- अभी तुम्हारे में जिस भगवान ने जिज्ञासु का रूप लिया है वो ज्ञान का रूप भी लेगा |
प्रश्न- विश्व में शांति कब होगी?
उत्तर- विश्व तुम्हारे अंदर है और प्रश्न करते वक्त तुम उसे बाहर रख देते हो |
प्रश्न- भगवान आपनी बाते सुनाता है या नहीं?
उत्तर- आप ताली बजाकर आप ही सुनते हो, उसी तरह से ये भी करता है |
प्रश्न- मुझे सब बाते नहीं समझती है |
उत्तर- जिसका जितना माप है उतना ही वो समझता है |
प्रश्न- कोई जगह विरोध दिखता है तो क्या करे?
उत्तर- वहा विरोध रूप से प्रकाश हो रहा है ऐसा देखना चाहिए |

7

श्रीरमण महर्षि

श्रीरमण महर्षि ने एक मनुष्य ने निचे बताये नुसार प्रश्न पूछे थे |
प्रश्न- इस जगत में भविष्य में क्या होगा?
उत्तर- " आप वर्तमान जगत भी ठीक तरह से नहीं जानते है तो भविष्य किस तरह से जान सकते हो? भविष्य का वर्त्तमान के साथ संबंध है |"
अभी का सायन्स कहता है की
Our knowledge of time is not a priory but the result of observation.
याने की 24 घंटे का दिन देखकर तो अपने लिए वो दिन होता है | पशु पक्षी को 24 घंटे का दिन नहीं |

The reality which we actually experience is so pliable that it appears to a quite surprising degree to be determined by our approach; it seems to behave, so to speak, in accordance with what we expect from it. If we presuppose nothing but mechanical laws, we get a mechanical universe; If we presuppose evolution, everything seems to fall in with idea; if we presuppose persons, and only if we do so, we get a world of persons; if we acknowledge absolute values, we also experience them. This confirms the predominance of internal reality where, as we have seen, anticipation is needed to arrive at any understanding at all. The way in which we approach reality lays a great responsibility upon us.

याने दर्शन के अनुसार सत्य मिलेगा | सत्य को बहोत से पासे है | यदि हम जड़ का धर्म देखने की इच्छा रखेंगे तो जड़ के धर्म दिखेंगे | जो परिणाम अच्छा लगेगा तो वो दिखेगा, यदि बस्ती का विचार आयेगा तो (स्वप्न के जैसा) मनुष्यो के समूह दिखेंगे, यदि चेतन धर्म देखने की इच्छा होगी तो सर्वत्र् चेतन ही दिखेगा | सभी जगत अंदर है | दर्शन के ऊपर सब आधार है और उससे देखनेवाले के ऊपर बहोत जवाबदारी है | इस बारेमे इस पुस्तक के मंगलाचरण में स्पष्ट

किया गया है|

परिशिष्ठ - 2

समाज सेवा और एक जिव- वाद

कुछ समय से समाज सेवा का आग्रह बहोत ही बढ़ गया है | वो सृष्टी- दृष्टिवाद का विषय है, कारण की बहोत से मनुष्य स्वतंत्र रीती से घूमते फिरते दिखते है |

दृष्टि- सृष्टिवाद की रीती से देखे तो मात्र् एक जिव मुख्य है | जैसे स्वप्न में है वैसा ही जाग्रत में है | अमेरिका का तत्वज्ञानी पुरुष Ushenko उसके पुस्तक Philosophy of Relativity में लिखते है की :-

" In the human aspect, sociality is compatible with physical independence of different attitude towards oneself, precisely because the social agent takes all of them, except his own, in imagination. He does not actually disintegrate into a multiple being, because the imaginative attitude are only supplementary appendices to the single physical attitude connected with the state of his body. But an event which is physically split into several perspective agencies is a group and not a single event. Furthermore, it is not a unified group but a sheer multiplicity of appearances."

याने की स्वप्न में जैसे अनेक जिव भूल से दिखते है वैसे ही जाग्रत में भी अनेक जिव भूल से दिखते है | उसका मुख्य कारण ये है की वो दुसरे जिव की दशा का विचार करते है पर खुद की दशा का विचार नहीं करते है | ऐसा करने के बावजूद भी वो अनेक रूप से नहीं होता, कारण की उसके कल्पना में रहे हुए जिव ये उसके देह के प्रमाण से परिशिष्ट है | जो घटना अनेक रूप से दिखती है वो समाज रूप से दिखती है, फिर भी वो अनेकत्व प्रतिभासिक है |

जो अलग मनुष्य दिखते है उनके स्वार्थ भी अलग अलग दिखते है इसलिए अनेक जिव सच्चे लगते है | स्वप्न में दुसरे जिव को काटा लगा हो उसका दुःख जिसको स्वप्न आया हो उसे नहीं होता है | किसी को काटा नहीं लगे इसके लिए समाज के थोड़े लोगो को इकट्ठा करके वो रास्ता साफ करने का प्रयत्न करता है और वो काम पूरा होने से पहले वो यदि जाग जाता है तो काटे का दुःख जिसे हुआ था वो मनुष्य किस तरह से खोजेंगे?

स्वप्न के वक्त स्वप्न ये जाग्रत है | स्वप्नवाला मनुष्य थोड़े में अहंबुद्धि रखता है और बाकि के जीवजगत को इदंता में रख देता है | जितने भाग में अहंबुद्धि है उतने भाग में यदि काटा तो उसे दुःख होता है | सामने रहे हुए मनुष्य को यदि काटा लगता है तो उसका दुःख उसे नहीं होता है कारण की उसके ज्ञान में वो दूसरा मनुष्य है | और दुसरे मनुष्य के शरीर दिखता है और शरीर का जन्म अलग अलग काल में होता है इसलिए स्वप्न के मनुष्य अलग अलग तारीख पर जन्मे होंगे ऐसा निश्चित होता है | ऐसी भ्रान्ति होने के लिए मुख्य कारण ये है की वो दुसरे का जीवन पहले देखते है और वो उसकी reference system बनती है | खुद का जीवन वो नहीं जनता है | जाग्रत में जो समाज सेवा होती है उसमे भी खुद के सिवा दुसरे को सुधारने का विचार आता है | मेरा कुछ भी हो पर मेरा देश का भला होना चाहिए; पर मरने के बाद मेरा देश कौनसा?

विचारकी सच्ची रीत ये है की पहले खुद का प्रमाण ठीक करना याने की खुद की जगह और खुद का काल निश्चित करना | ये बहोत मुश्किल काम है | उसके लिए दर्शनशाश्त्र का अभ्यास चाहिए, उसके लिए नए प्रकारके शिक्षक चाहिए और नयी पाठशालाए चाहिए |

दर्शन के लिए अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान भी रहता है | स्वप्न में एक स्त्री सोयी हो, उसके सामने उसकी सौतन देखती है | वो सौतन कुछ कारण से मर जाती है तो स्वप्नवाली स्त्री को सुख होता है, पर यदि वो जाग जाती

है तो सुखदुःख मिथ्या लगते है | कारण की प्रमाण बदल जाते है | प्रमाण की भूल पकड़ना ये बहोत जटिल काम है | किसी स्री को उसकी मरी हुयी सौतन का भुत सताता हो उस वक्त उसे मारिये तो उसके सौतन को मार लगता है कारण की उस वक्त उस देह का अभिमान उसके सौतन लिया होता है |

भाषा से भी भूल होती है | स्वप्न में दिखते मनुष्य के साथ बाते हो सकती है, इसलिए वहा बहोत से जिव होने चाहिए | उस वक्त भी स्वप्नवाला मनुष्य खुद की सच्ची दशा नहीं जान सकता है| जाग्रत में भी ऐसा ही है | रंग का ज्ञान भी भूल में डाल देता है | बालक के जन्म के वक्त उसमे जगत का ज्ञान नहीं होता है | वो मात्र उसकी माँ को ही पहचानता है, फिर भी जब भी उसकी माँ नयी साड़ी पहनती है अभी वो बालक उसकी माँ को नहीं पहचान सकता है |

मायिक दर्शन में मोह और ममता भी रही होती है | वैष्णवोकी हवेलीमे भगवान की मूर्ति छोटी होती है और सोने की होती है | उस मंदिर में कोई चोर जाता है तो उसे ठाकुरजी नहीं दिखते है पर सोना दिखता है | जहा दर्शन में स्वार्थ होता है वहा दर्शन के अनुसार दृश्य बनता है | दर्शन में से राग- द्वेष निकालना ये बहोत ही मुश्किल काम है |

बहोत से मनुष्य का भला करना ये विचार में प्रमाण बाहर चल जाता है | वो मनुष्य अंदर का जगत नहीं देख सकता है और नहीं जान सकता है | खुद के घर का दिया दुसरे के घर में उजाला करने के लिए देने के बाद खुद के घर में अँधेरा हो जाता है, पर लोग प्रशंसा करते है इसलिए खुद का अँधेरा भी अच्छा लगता है | वहा लोकेषणा प्रमाण है |

दृष्टि- सृष्टिवाद में खुद की जगह और खुद का काल ठीक करना पड़ता है उस वक्त ब्रह्म का परोक्ष पना दूर होता है और जिव का परिच्छिन्न पना दूर होता है |

गौत्तम के न्यायशाश्त्र में ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता है | ये पद्धति वेदांत में भी स्वीकार किया है | रज्जू साप के दृष्टान्त में जैसे की साप ज्ञेय नहीं, फिर भी वहा अनिर्वचनीय साप उत्पन्न होता है ऐसा वेदांत में माना हुआ है कारण की ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता है ऐसा माना हुआ है | यूरोप में बहोत वर्षो तक ऐसा मानने आता था की ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता है | वो सृष्टि- दृष्टिवाद का विषय है | यूरोप का न्यायशाश्त्र अरिस्टोटल ने शुरू किया और उसमे जाती और व्यक्ति के विचार आते है उसमे भी ज्ञेय के अनुसार ज्ञान है |

लगभग सौ वर्ष हो गए यूरोप के न्यायशाश्त्रवालो ने गणित की मदत मिली हुयी है | उसमे देखनेवाले का इष्टत्व symbol मिला हुआ है | उसमे संबंध का न्याय आता है और संबंध के न्याय में ज्ञान के अनुसार ज्ञेय रहता है | स्वप्न में उसका अनुभव होता है | जहा जहा मायिक संबंध होता है वहा वहा ज्ञान के अनुसार ज्ञेय होता है | गणितशाश्त्रवाले इस बारेमे ठीक से समझ सकते है | दृष्टि- सृष्टिवाद में भी ज्ञान के अनुसार ज्ञेय होता है, और उसे गणित की मदत मिली हुयी है, फिर भी अभी भी कॉलेज में अरिस्टोटल का न्याय ही चलता है और वो विद्यार्थियो को भूल में डालता है |

जहा ज्ञान के अनुसार ज्ञेय रहता है वहा मनुष्य खुदको अच्छा लगता है उतना ही जगत देखता है | उसे मायिक संबंध कहते है | वो समझने के लिए वेदांत में तिन अवस्थाकी प्रक्रिया अच्छी है | जहा ज्ञेय के अनुसार ज्ञान रहता है वहा मात्र जाग्रत अवस्था का विचार है और वो सृष्टि- दृष्टिवाद का विषय है | वहा ज्ञेय को रखने की जगह कहा से आयी इस बात का विचार नहीं |

रज्जू- साप निकला है देखनेवाले के ज्ञान में से, फिर भी उसको सामने रखना और ज्ञेय के अनुसार ज्ञान मानना ये मुर्खपना है | किसी को खुद के सामने रखना ये ब्रह्म को भुलाना जैसे ही है | और दुसरे के साथ बाते करने से ये भूल जड़ी होती जाती है कारण की दुसरे के विचार बढ़ते जाते है और खुद के लिए विचार करने की शक्ति नहीं होती है |

मनुष्य जब भी खुद का विचार नहीं करता है तभी इतिहास में बह जाता है और काल के वश हो जाता है | उस स्मरण से भूतकाल बनता है और आशा से भविष्यकाल बनता है, फिर भी काल खुद ने बनाया है इस बात का उसे पता नहीं चलता है | देशकाल की माया संबंधवाली है | वो संबंध के अनुसार बदलती रहती है | स्वप्न आता है तब उसकी खातरी होती है पर जाग्रत में संबंध बदलना बहोत मुश्किल है | उसके लिए नयी प्रकारका शिक्षण चाहिए और नया पुरुषार्थ चाहिए |

अनात्मा का दर्शन जरुरत बढ़ता है | आत्मा का दर्शन जरुरत काम करता है | संबंध बदलता है, तभी काल बदलता है, देश बदलता है, जगह बदलती है, और बाते कम करना अच्छा लगता है |

सच्चा दर्शन अन्वय भाव का होता है | उसमे भेद नहीं पड़ता है | चीजो का विचार अथवा कारण कार्य की

पद्धति अन्वय भाव में उपयोगी नहीं, अनात्मा से आत्मा अलग है, वो व्यतिरेक भाव है | आत्मा से अलग कोई नहीं वो अन्वय भाव है | अन्वयभाव में भेद नहीं इसलिए चीजे नहीं और समाज नहीं | उसमे कारण- कार्यभाव की रीत भी नहीं चलती है | अन्वय भाव को अंग्रजी में expression कहते है |

स्वप्न का कारण खोजने जाय तो स्वप्न के बाहर जाना चाहिए कारण की संपूर्ण स्वप्न कार्य में लिए जाता है और स्वप्न के बाहर देखे तो स्वप्न नहीं रहता है | जहा संपूर्ण अवस्था नयी होती है वहा कारण- कार्य की रीत नहीं चल सकती है | जाग्रत की संपूर्ण अवस्था भी नयी होती है | उसका कारण खोजना हो तो जाग्रत के बाहर जाना चाहिए और जाग्रत के बाहर जाय तो जाग्रत नहीं रहता है, इसलिए जाग्रत में भी कारण- कार्य की रीत पकड़ना ये ठीक नहीं | जाग्रत का कारण अविद्या है ऐसा मानने में संपूर्ण जाग्रत की अवस्था कार्य बनती है | इसका कारण अविद्या जाग्रत के बाहर होनी चाहिए और जाग्रत के बाहर उसकी खोज करे तो जाग्रत अवस्था ही नहीं रहती है | प्रतिभासिक सत्ता में ज्ञान सत्ता रहती है और उसमे अंश- अंशी भाव नहीं बनता है | जहा जगत प्रतिभासिक लगता है वहा अनेक जिव की हयाती नहीं और उनकी उत्पत्ति अलग अलग वक्त पर हुयी नहीं | पहले सामने के मनुष्य को देखकर विचार करना ये सच्ची रीत नहीं | पहले दर्शन का विचार करना चाहिए |

Field physics postulates the field and its relatedness defined experimentally in terms of directions and intensities of its forces

याने की क्षेत्रधर्म क्षेत्र तैयार करता है उसमे चीजे नहीं पर संबंध है, शक्ति है और दिशा है | जैसा स्वप्न में है वैसा ही जाग्रत में है | उस शक्तियों को विज्ञानमय कोष अथवा समष्टि बुद्धि कहते है | उसमे भी चीजे नहीं पर शक्तिया है | पर शक्तियों को अहंकार का रूप लेना अच्छा कगता है | जैसे की अमेरिका का प्रमुख केनेडी कहते है की अंतिम दस वर्ष में अमेरिका का मान (prestige) कम हुआ है | वो शक्ति के बदले में मान मांग रहा है | प्रांत के प्रधान भी खुद की भाषा की शक्ति के लिए प्रमाण मानते है | प्रत्येक स्त्री भी मान मांगती है | स्वप्न के एक प्रमाण से शक्तिया चलती है | जाग्रत में भी ऐसा ही है | ऐसी दशा में से अनेक जिव उत्पन्न होते है | यदि एक ही प्रमाण से अनेक शक्तिया चलती है ऐसा लगता है तो क्षेत्र उत्पन्न होता है और अनेक जिव उत्पन्न नहीं होते है | मात्र सब शक्ति एक प्रमाण से चलती है पर प्रत्येक शक्ति खुद का प्रमाण मांगे तो बहोत प्रमाण होंगे और बहोत जिव होंगे | महत्त्व से बहोत जिव नहीं; कारण की वहा क्षेत्र है और शक्तिया है | पर तामस अहंकार खुद की शक्ति से खुद का प्रमाण तैयार करता है इसलिए बहोत से जीवो का देखाव दिखता है | वास्तव में बहोत जिव नहीं सभी भगवान के प्रमाण से चलते है इसलिए क्षेत्र का विचार और उसकी पद्धति ये ऊँची पद्धति है | जिव और जगत को लेकर विचार करना झूठी पद्धति है | क्षेत्र की पद्धति में दर्शन की महिमा भी प्रगट होगी | स्वप्न में भी दर्शन की महिमा है उसमे शक्तिया है पर जिव नहीं और प्रमाण एक है |

ॐ